समर्पण

जिन अक्षरदेहधारी कल्याणकी कृपाने
मेरे कृष्ण अन्तःकरणको कल्याण-
मार्गगामी बना दिया है, उन
कल्याणस्वरूप श्रीकृष्ण-
चन्द्रके पुनीत
पादारविन्द-
में

विनीत

"मंगल"

चरित्रसे की जा सकती है। इसी बातको दृष्टिमें रखकर हमने गुजरातके भक्तशिरोमणि नरसिंह मेहताका चरित्र-चित्रण करनेका प्रयास किया है।

परन्तु हमें भय है कि इस बीसवीं शताब्दिके तथाकथित सभ्य और उन्नत समाजको, जो विधि-निषेधके बन्धनोंको शिथिल करके व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य प्राप्त करना ही परम पुरुषार्थ समझता है तथा ईश्वर और धर्मको मूर्ख लोगोंको फँसा रखनेके लिये की गयी कल्पना मानकर इनको संसारसे सदाके लिये उठा देना चाहता है, यह प्रायः ४०० वर्ष पहलेके एक भक्तका जीवन-चरित्र अप्रासङ्गिक ही प्रतीत होगा। इतना ही नहीं, उसकी दृष्टिमें इस चरित्रकी तमाम घटनाएँ निरर्थक, कपोलकल्पित और अविश्वसनीय मालूम होंगी। वह इस चरित्रको समाजके लिये अत्यन्त अनिष्टकारी समझेगा। परन्तु हम नम्रतापूर्वक उस समाजसे निवेदन करना चाहते हैं कि जिस स्वातन्त्र्यको वह वरेण्य समझता है, जिस बुद्धिके बलपर वह ईश्वर और धर्मको तिलाञ्जलि देना चाहता है, वह स्वतन्त्रता और बुद्धि दोनों ही उसे धोखा दे रहे हैं। जिस स्वतन्त्रताको उसने लक्ष्य बनाया है, वह वास्तवमें स्वतन्त्रता नहीं, उच्छृङ्खलता है और उच्छृङ्खलता पतनकी ओर ही ले जाती है, हमें दिन-पर-दिन पराधीनतामें ही जकड़ती जाती भौतिक बुद्धि भी उसीकी सहचरी है और वही मोहान्धकारसे रहनेके कारण पतनका कारण बनती है। सच्ची स्वतन्त्रता

और कल्याणकारी बुद्धि धर्ममय जीवन विताने तथा भगवत्कृपा प्राप्त करनेपर ही मनुष्यको मिलती है। अवश्य ही हमारे दुर्भाग्यसे आज धर्मानुरागी जनतामें भी मिथ्याचारका प्रसार कम नहीं है और यही दूसरे पक्षके अविश्वासका एक जबर्दस्त कारण बन गया है। परन्तु इसके लिये किसीको दोष नहीं दिया जा सकता। प्रत्येक काल, देश और समाजमें पतनावस्थामें ऐसा मिथ्याचार फैला हुआ देखा गया है और इस परिस्थितिसे निकालकर संसारको वास्तविक कल्याणमार्ग दिखानेके लिये ही समय-समयपर प्रतिभाशाली सत्पुरुषोंका अवतार होता है। वे महापुरुष हमारे बीच रहकर अपने आदर्श जीवन तथा स्वानुभवपूर्ण असूल्य उपदेशोंसे सर्वसाधारणको उन्नतिका मार्ग दिखाते हैं। उनके जीवनको हमारी स्थूल बुद्धिके द्वारा तौला नहीं जा सकता। उनके पवित्र जीवनका यथाशक्ति अनुकरण करना ही हमारे लिये सौभाग्यका विषय है।

भक्तराज नरसिंहरामका जीवन अलौकिक बातोंसे भरा हुआ है। यद्यपि हमारी तुच्छ बुद्धिके लिये सारी बातोंका रहस्य समझना और उनपर विश्वास करना कठिन है, फिर भी वे बातें हमारे अंदर एक विचित्र आशाका सञ्चार कर सकती हैं जिसका प्रकाश हमें कल्याणमार्गपर अग्रसर होनेमें पर्याप्त सहायक हो सकता है।

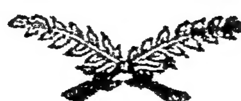
यद्यपि भक्तराजकी अनेक जीवनियाँ उनकी मातृभाषा गुजराती प्रकाशित हुई हैं; परन्तु उनमेंसे कोई भी अभीतक

साहित्य और इतिहासकी दृष्टिसे सर्वमान्य नहीं हो सकी है। इतना ही नहीं, प्रत्युत उनके जन्मादिका संवत् भी आजपर्यन्त विवादग्रस्त है। ऐसी स्थितिमें यह कहना तो कठिन है कि यह चरित्र सब दृष्टियोंसे सर्वमान्य और प्रामाणिक हो सकता है। फिर भी जहाँतक सम्भव था इसे लिखनेमें हमने स्वयं भक्तराज-रचित पदोंसे ही अधिक सहायता ली है। अवश्य ही कोई सच्चा विस्तृत इतिहास न मिलनेके कारण समस्त घटनाओंको शृङ्खलाबद्ध तथा रोचक बनानेके लिये हमें कहीं-कहीं कल्पनाका सहारा लेना पड़ा है। खैर, जो कुछ है, पाठकोंके सामने है। इतना तो कहना ही होगा कि इसके अंदर यदि कोई मधुर, सरस और उपदेशपूर्ण बात आयी हो तो वह उन भक्तराजकी ही होगी और इसमें जो त्रुटियाँ हैं वे तो हमारी हैं ही।

इस पुस्तकके आद्योपान्त संशोधनमें और भाषासुधारनें कल्याण-कार्यालयके पं० चन्द्रदीपजी त्रिपाठीने हमारी बड़ी भारी सहायता की है, इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

वामन-जयन्ती
मु० दात्राणा (जूनागढ़ स्टेट)
मंगलवार सं० १९९१

विनीत—
"मंगल"



भक्त नरसिंह मेहता



गोलोकमें नरसी मेहता

महात्माकी कृपा

पुण्यभूमि आर्यावर्त्तके सौराष्ट्र-प्रान्तमें जीर्णदुर्ग नामक एक अत्यन्त प्राचीन ऐतिहासिक नगर है, जिसे आजकल जूनागढ़ कहते है। भक्तप्रवर श्रीनरसिंह मेहताका जन्म लगभग सं० १४७०में इसी जूनागढ़*में एक प्रतिष्ठित नागर ब्राह्मण-परिवारमें हुआ था।

---

* कुछ लोगोंका मत है कि जूनागढ़के पास ही 'तलाजा' नामक गाँवमें नरसिंह मेहताका जन्म हुआ था और पीछे उनका परिवार जूनागढ़में आकर रहने लगा था। इसकी पुष्टि स्वयं नरसिंह मेहताके एक पदसे भी होती है, जिसमें वह कहते हैं—

'गाम तलाजामां जन्म मारो थयो, भाभीए मूरख कही मेहेणुं दीधुं;
वचन वाग्युं एक अपूज शिवलिंगनुं, वनमांहे जइ पूजन कीधुं।'

उनके पिताका नाम था कृष्णदामोदर दास तथा माताका नाम था लक्ष्मीगौरी। उनके एक और बड़े भाई थे जिनका नाम था वणसीधर या वंशीधर। अभी वंशीधरकी उम्र २२ वर्ष और नरसिंहरामकी ५ वर्षके लगभग थी कि उनके माता-पिताका देहान्त हो गया और उसके बाद नरसिंहरामका लालन-पालन बड़े भाई तथा दादीने किया। दादीका नाम था जयकुँवरि।

नरसिंहराम बचपनसे गूँगे थे; प्रायः आठ वर्षकी उम्रतक उनका कण्ठ नहीं खुला। इस कारण लोग उन्हें 'गूँगा' कहकर पुकारने लगे। इस बातसे उनकी दादी जयकुँवरिको बड़ा क्लेश होता था। वह बराबर इस चिन्तामें रहती थीं कि मेरे पौत्रकी जबान कैसे खुले। परन्तु मूकको वाचाल कौन बनावे, पंगुको गिरिवर लाँघनेकी शक्ति कौन दे? जयकुँवरिको पूरा विश्वास था, ऐसी शक्ति केवल एक परमपिता परमेश्वरमें ही है; उनकी दया होनेपर मेरा पौत्र भी तत्काल वाणी प्राप्त कर सकता है और साथ ही यह भी उसे विश्वास था कि उन दयामय जगन्नाथकी कृपा साधारण मनुष्योंको उनके प्रिय भक्तोंके द्वारा ही प्राप्त हुआ करती है। अतएव स्वभावतः ही उसमें साधु-महात्माओंके प्रति श्रद्धा और आदरका भाव था। जब और जहाँ उसे कोई साधु-महात्मा मिलते, वह उनके दर्शन करती और यथाशक्ति श्रद्धापूर्वक सेवा भी करती।

कहते हैं, श्रद्धा उत्कट होनेपर एक-न-एक दिन फलवती होती ही है। आखिर जयकुँवरिकी श्रद्धा भी पूरी होनेका सुअवसर

आया। फाल्गुन शुक्ल पञ्चमीका दिन था। ऋतुराजका सुखद साम्राज्य जगत्‌भरमें छा रहा था। मन्द-मन्द वसन्तवायु सारे जगत्‌के प्राणियोंमें नवजीवनका सञ्चार कर रहा था। नगरके नर-नारी प्रायः नित्य ही सायंकाल हाटकेश्वर महादेवके दर्शनके लिये एकत्र हुआ करते; स्त्रियाँ मन्दिरमें एकत्र होकर मनोहर भजन तथा रासके गीत गाया करतीं। नित्यकी तरह उस दिन भी खासी भीड़ थी। जयकुँवरि भी नातीको साथ लेकर हाटकेश्वर महादेवके दर्शनको गयीं। दर्शन करके लौटते समय उनकी दृष्टि एक महात्मापर पड़ी, जो मन्दिरके एक कोनेमें व्याघ्राम्बरपर पद्मासन लगाये बैठे थे। उनके मुखसे निरन्तर 'नारायण-नारायण' शब्दका प्रवाह चल रहा था। उनका चेहरा एक अपूर्व ज्योतिसे जगमगा रहा था। देखनेसे ही ऐसा मालूम होता था जैसे कोई परम सिद्ध योगी हों। उनकी दिव्य तपोपलब्ध प्रतिभासे आकृष्ट होकर जयकुँवरि भी अपने साथकी महिलाओंके सङ्ग उनके दर्शन करनेके लिये गयीं। उसने दूरसे ही बड़े आदर और भक्तिके साथ महात्माजीको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर विनती की—'महात्मन्! यह बालक मेरा पौत्र है; इसके माता-पिताका देहान्त हो चुका है। प्रायः आठ वर्षका यह होने चला, पर कुछ भी बोल नहीं सकता। इसका नाम नरसिंहराम है; परन्तु सब लोग इसे गूँगा कहकर ही पुकारते हैं। इससे मुझे बड़ा क्लेश होता है। महाराज! ऐसी कृपा कीजिये कि इस बालककी वाणी खुल जाय।'

गोस्वामी तुलसीदासजीने ठीक ही कहा है कि—

संत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन पै कहइ न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता। संत द्रवइ पर-ताप पुनीता॥

महात्माओंका हृदय मक्खनके समान होता है। इतना ही नहीं, माखन तो केवल अपने ही तापसे द्रवित होता है और सत्पुरुष दूसरोंके तापसे द्रवीभूत हो जाते है। फिर ये महात्मा तो दैवीशक्तिसे सम्पन्न थे और मानो उस वृद्धाकी मनःकामना पूरी करनेके ही लिये ईश्वरद्वारा प्रेरित होकर वहाँ आये थे। उन्होंने बालकको अपने पास बिठाया और उसे एक बार ध्यानपूर्वक देखकर कहा—'यह बालक तो भगवान्‌का बड़ा भारी भक्त होगा।' इतना कहकर उन्होंने अपने कमण्डलुसे जल लेकर मार्जन किया। और बालकके कानमें फूँक देकर कहा—'बच्चा कहो राधे कृष्ण राधे कृष्ण!'

बस, महात्माकी कृपासे जन्मका गूँगा बालक 'राधे कृष्ण राधे कृष्ण' कहने लगा। उपस्थित सभी मनुष्य आश्चर्यचकित हो गये और महात्माजीकी जय-जयकार पुकारने लगे।

गूँगे पौत्रके मुखसे भगवान्‌का नामोच्चार सुनकर वृद्धा जयकुँवरिको कितनी प्रसन्नता हुई होगी, इसे कौन बता सकता है? उसने महात्माजीको बार-बार प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बड़ी दीनताके साथ प्रार्थना की—'महाराज! आपकी ही कृपासे मेरा पौत्र अब बोलने लगा। मेरा बड़ा पौत्र राज्यमें थानेदारके पदपर है। आप मेरे घरपर पधारनेकी कृपा करें और मुझे भी यथाशक्ति सेवा करनेका सुअवसर प्रदान करें। आपकी चरणरजसे मेरा घर भी पवित्र हो जायगा।'

परन्तु सच्चे महात्मा सेवा या पुरस्कारके भूखे नहीं होते। वे तो सदा स्वभावसे ही लोक-कल्याणकी चेष्टा करते रहते हैं। महात्माजीने प्रसन्नतापूर्वक उत्तर दिया—'माता ! मुझे कोई योगबल या तपोबल नहीं प्राप्त है। इस संसारमें जो कुछ होता है, सब केवल प्रभुकी कृपासे ही होता है। उन महामहिम परमात्माकी माया 'अघटनघटनापटीयसी' कहलाती है। अतः मेरा उपकार भूलकर उन परमात्माके ही प्रति कृतज्ञता प्रकट करो और उनका नामस्मरण, भजन-पूजन करो। मैं इस तरह अकारण अथवा प्रतिष्ठाके लिये किसी गृहस्थके घरपर नहीं जाता। तुम घरपर जाकर प्रभुका भजन करो, तुम्हारा कल्याण होगा। मैं तो अब गिरनारपर जाता हूँ और तुम्हारे इच्छानुसार यह कह जाता हूँ कि थोड़े ही दिनोंमें एक कुलवती सुरूपा कन्यासे इसका विवाह भी हो जायगा।'

जयकुँवरिको महात्माजीके सामने विशेष आग्रह करनेका साहस न हुआ। वह पौत्रके साथ प्रसन्नवदन अपने घर चली आयी और उसने बड़े पौत्र वंशीधरसे महात्माजीका चमत्कार कह सुनाया। वंशीधरने महात्माजीके दर्शन करनेकी लालसासे सिपाहियोंद्वारा बड़ी खोज करायी; परन्तु कहीं उनका पता न लगा। लोगोंका विश्वास है कि अपने भावी भक्त नरसिंह मेहताको इष्टमन्त्र तथा वाचा देनेवाले सिद्धपुरुष स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही थे।



माणिकगौरी स्वरूपवती और सुलक्षणा कन्या थी; अतएव मनचाही योग्या पौत्रवधू पाकर उसे बड़ा सन्तोष हुआ।

वंशीधरने छोटे भाई नरसिंहरामके केवल पालन-पोषण और विवाहकी ही चिन्ता नहीं की, बल्कि उनकी शिक्षाकी ओर भी ध्यान दिया। उन्होंने नरसिंहरामको एक संस्कृत पाठशालामें पढ़नेके लिये बैठा दिया। परन्तु नरसिंहरामका मन पढ़ने-लिखनेमें नहीं लगा। जबसे उन्हें महात्माजीके द्वारा इष्टमन्त्रकी प्राप्ति हुई तबसे उनका मन अधिकाधिक भगवान्‌की ओर आकृष्ट होने लगा। वह निरन्तर 'राधे-कृष्ण' नामका जप किया करते थे। सुबह-शाम मन्दिरोंमें जाकर देवी-देवताओंकी पूजा करते, दर्शन करते और भजन-कीर्तन सुनते। श्रीशंकर भगवान्‌में भी उनकी बड़ी भक्ति थी। वह मन्दिरमें जाकर बड़ी श्रद्धा और प्रेमके साथ उमा-महेश्वरकी पूजा-अर्चना करते और प्रेमानन्दमें विभोर होकर भोलानाथके गुणगान करते। अगर कहीं पुराण या भागवतकी कथा होती तो वहाँ जाकर बड़े ध्यानसे भगवत्कथा सुना करते। द्वारिका आने-जानेवाले साधु-महात्मा जब अपने गाँवमें आते तो उनके दर्शन करते, यथासाध्य उनकी सेवा करते, उनके उपदेश सुनते। अगर कोई भजन-कीर्तन करता तो स्वयं भी उसके साथ बैठकर भजनके पद गाते या करताल बजाया करते। कोई यदि भावावेशमें आकर नृत्य करने लगता तो वह भी उसके साथ नाचने-कूदने लगते। अगर कभी कोई रासमण्डली गाँवमें आ जाती तब तो इनके आनन्दका कोई ठिकाना ही न रहता। नित्य ही रासलीला देखा करते। श्रीराधा, श्रीललिता आदि सखियों तथा

व्रजके अन्य गोप-गोपियोंके भगवत्प्रेमको देखकर वह इतने तल्लीन हो जाते कि उन्हें अपने शरीरकी सुधि-बुधि भी नहीं रहती। कभी-कभी तो स्वयं भी वह किसी मण्डलीमें शामिल हो जाते। जब उन्हें रासमें गोपी बनकर नाचनेका सुअवसर मिल जाता तब तो वह अपार आनन्दका अनुभव करते और कृष्णप्रेममें नाचते-नाचते बेहोश हो जाते। वह अपनी धुनमें खाना-पीना भी छोड़ देते; कई दिनों तो घरपर जाते ही नहीं। इसके लिये उन्हें भाई-भौजाई-की डाँट भी सुननी पड़ती, ताड़ना भी सहनी पड़ती, समाजमें निन्दा भी होती; परन्तु फिर भी वह अपनी चाल न छोड़ते। भला जो एक बार अमृतस्वरूप भगवत्प्रेमरसका आस्वादन पा गया उसे कोई उससे दूर हटा सकता है? भक्त नरसिंहरामने पढ़ना-लिखना, खाना-पीना, सोना, खेलना-कूदना, दु:ख-सुख, निन्दा-स्तुति सब कुछ उस एक भगवत्प्रेमके ऊपर वार दिया।

वंशीधरने उन्हें अपने मनोऽनुकूल ठीक मार्गपर लानेके लिये कोई बात उठा न रक्खी; भौजाईने भरपूर कोसने तथा पति-पत्नी दोनोंको कष्ट पहुँचानेमें अपनी ओरसे कोई कोर-कसर न रहने दी; परन्तु 'जैसे काली कामरी चढ़त न दूजो रंग'—नरसिंहरामके पक्के रंगपर कोई दूसरा रंग न चढ़ा। धीरे-धीरे उनकी उम्र भी प्राय: पंद्रह वर्षकी हो गयी। भाईने जब देखा कि अब उनका पढ़ना-लिखना कठिन है तब उन्होंने उनको घोड़ोंकी परिचर्या तथा घास काटनेका कार्य सौंप दिया। परन्तु इस साईसीके कामसे भी नरसिंहरामको कोई कष्ट नहीं हुआ। वह बड़ी प्रसन्नताके साथ भगवन्नामस्मरण करते हुए शक्तिभर सारा कार्य करने लगे।

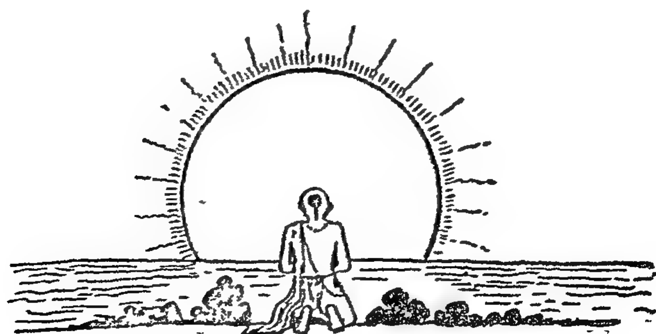
प्रायः सोलह वर्षकी अवस्था होते-होते नरसिंहरामकी पत्नी माणिकगौरीके गर्भसे एक पुत्रीका जन्म हुआ। उसके दो वर्ष बाद फिर माणिकगौरीको एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। पुत्रीका नाम कुँवरबाई और पुत्रका नाम शामलदास रक्खा गया। इस तरह नरसिंहरामको दो सन्तानोंका पिता होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

परन्तु उनका यह सौभाग्य दुरितगौरीकी आँखोंका काँटा बन गया। एक तो यों ही देवर-देवरानीको देखकर वह सदा जला करती थी; अब उनके परिवारकी वृद्धि उसके लिये और भी असह्य हो उठी। दोनों भक्त दम्पति यद्यपि सेवक-सेविकाकी तरह दिन-रात घरके सब छोटे-बड़े काम किया करते थे, फिर भी दुरितगौरी यही समझती थी कि ये लोग मुफ्त ही घरमें बैठकर खा रहे हैं और दिन-पर-दिन इनका खर्च भी बढ़ता ही जाता है। अतएव वह अब नित्य उनके कामोंमें अकारण दोष निकालने लगी और झूठी-झूठी बातोंसे उनके विरुद्ध अपने पतिके कान भरने लगी। नाना प्रकारके कारण दिखाकर उन्हें सताने लगी। वंशीधर यद्यपि यह जानते थे कि मेरी पत्नी बड़ी दुष्टा है, द्वेषवश छोटे भाई और उसकी पत्नीपर झूठा दोषारोपण करती है, वे बेचारे तो एकदम निर्दोष और पवित्र हैं, फिर भी कभी-कभी पत्नीकी बातोंमें आकर वह छोटे भाईको कुछ भला-बुरा सुना दिया करते थे। इस तरह परिवारमें कुछ कलहका सूत्रपात हो गया।

वृद्धा जयकुँवरिको इस कलहका भावी कुपरिणाम स्पष्ट दिखायी दे रहा था। परन्तु घरमें मृत्युशय्यापर पड़ी एक वृद्धाकी

बात सुनता कौन है ? वह चुपचाप सब देखा करती । धीरे-धीरे उसकी अवस्था भी लगभग ९५ वर्षकी हो गयी । उसने मनमें सोचा—'अब मेरा जीवन बहुत थोड़ा है । अगर नरसिंहरामकी लड़कीका विवाह भी मेरे सामने ही हो जाता तो अपनी यह अन्तिम अभिलाषा भी पूरी करके मैं शान्तिपूर्वक इस संसारसे विदा होती और इस बेचारीका भी एक ठिकाना लग जाता ।' उन्होंने एक दिन वंशीधरको पास बुलाकर अपनी अभिलाषा प्रकट की ।

वंशीधरने वृद्धा दादीकी आज्ञा टालना उचित नहीं समझा । उन्होंने एक कुलीन और सुयोग्य वरकी खोज करनेके लिये कुलके पुरोहितको भेज दिया । पुरोहितजी घूमते-फिरते काठियावाड़के 'ऊना' नामक गाँवमें आये और उन्होंने वहाँके श्रीमन्त नागर श्रीरंगधर मेहताके पुत्र वसन्तरायके साथ कुँवरबाईका विवाह निश्चित किया । निश्चित तिथिपर बड़े धूमधामके साथ कुँवरबाईकी शादी हो गयी । वृद्धा जयकुँवरिकी अभिलाषा पूरी हुई और वह उसके लगभग तीन मास बाद शान्तिपूर्वक इस असार संसारसे सदाके लिये विदा हो गयी ।



शिवका अनुग्रह

बड़े भाईकी आज्ञाके अनुसार नरसिंहराम बड़ी सावधानीसे पशुओंका पालन करते थे । अपनी ओरसे जान-बूझकर काममें तनिक भी लापरवाही नहीं करते थे । जब इससे फुरसत मिलती थी तब भजन-पूजन करते थे, कथा-कीर्तनमें जाते थे अथवा साधुसङ्ग किया करते थे । परन्तु भौजाई उनसे कभी सन्तुष्ट नहीं रहती थी; वह बराबर उन्हें तंग करनेका कोई-न-कोई मौका ढूँढ़ा ही करती थी । नरसिंहराम उसके दुष्ट स्वभावके कारण उससे बहुत डरा करते थे । अपनी ओरसे बराबर ऐसी चेष्टा किया करते थे, जिसमें उसे शिकायत करनेका मौका ही न मिले । अधिकतर वह घर भी तभी आते जब बड़े भाई घरमें होते । जिस दिन

सरकारी कामसे वंशीधर कहीं बाहर चले जाते उस दिन तो नरसिंहरामकी दुर्दशा हो जाती। दुरितगौरीका सब दिनका क्रोध मानो उसी दिन जाग्रत् हो उठता और वह जितना कष्ट पहुँचा सकती उस दिन उतना दोनों पतिपत्नीको पहुँचाती। फिर भी भक्तराज कभी विचलित न होते। श्रीमद्भगवद्गीतामें जो भगवान्‌ने यह कहा है कि—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥
(२।५६)

'जिसका मन दुःख प्राप्त होनेपर उद्वेगरहित रहता है, सुखोंकी प्राप्तिकी स्पृहा जिसकी दूर हो गयी है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है।'—ठीक इसी स्थितिके अनुसार सब कुछ शान्तिपूर्वक सहन करते हुए, आनन्दपूर्वक अपना काम करते रहते।

एक दिन वंशीधर राज्यकार्यके लिये बाहर गये हुए थे। नरसिंहराम प्रातःकाल घरका काम समाप्तकर घास काटनेके लिये गये और प्रायः सन्ध्या समय घासका बोझ लेकर लौटे। घोड़ोंके सामने घास डालकर उन्होंने स्नान किया। दिनभर जंगलमें घूम-घूमकर घास काटते रहनेसे वह क्षुधासे पीड़ित हो रहे थे। अतः उन्होंने भौजाईसे भोजन माँगा।

इसपर दुरितगौरी कड़ककर कहने लगी—'देखो तो! बड़ा भगत आया है। रोज सुबह घास काटनेका बहाना करके घरसे

सुधि न थी। वह तो अखिल भुवनपतिके ध्यानमें पड़े थे और उन्हींकी पुकार कर रहे थे।

धीरे-धीरे रात वीती; सूर्य भगवान्‌के आगमनसे पृथ्वीका अन्धकार न मालूम कहाँ विलीन हो गया। फिर भी ब्राह्मण नरसिंह मेहता उसी स्थितिमें जमीनपर सिर टेके रुदन और विनती कर रहे थे। फिर दिन वीता और रात आयी और इस तरह दिनके वाद रात और रातके वाद दिन आता और चला जाता। परन्तु वह उसी स्थितिमें पड़े रहे। वह अपनी श्रद्धा और सङ्कल्पसे लेशमात्र भी विचलित नहीं हुए।

इस प्रकार प्रायः सात दिनकी उग्र तपस्यासे कैलासपतिका आसन डोल गया और सातवें दिन आधीरातके वाद भगवान् भोलानाथ भक्तके सामने साक्षात् प्रकट हुए। उन्हें देखते ही भक्तराज उनके परमपावन चरणकमलोंपर यह कहते हुए लोट गये कि 'मेरे भोलानाथ आओ! मेरे शम्भु आओ!'

भगवान् शङ्करने कहा—'वेटा! मैं तुम्हारी सात दिनकी घोर तपश्चर्यासे अत्यन्त प्रसन्न हूँ; तुम मुझसे इच्छित वर माँग लो।'

भक्तराजने नम्रतापूर्वक प्रार्थना की—'भगवन्! मुझे किसी वरदानकी इच्छा नहीं है। फिर भी आपकी आज्ञा वर माँगनेकी है; अतएव जो वस्तु आपको अत्यन्त प्रिय हो, वही वस्तु आप वरदानमें देनेकी कृपा करें।'*

* तमने जे वल्लभ होय जे दुर्लभ, आपो रे प्रभुजी मुने दया रे आणी।

ज्योति तो केवल श्रीभगवान्‌की एक नखमणिसे निकला करती है।*

ऐसे परमधामकी दिव्य शोभाको देखते हुए भगवान् शङ्कर द्वारिकाधीशके राजमहलमें पहुँचे। उस समय वहाँ भगवान्‌की धर्मसभा बैठी हुई थी। राजराजेश्वर देवकीनन्दन श्रीकृष्ण राज-सिंहासनपर विराजमान थे। उनकी सभाके सभासद् परमभागवत उग्रसेन, बलराम, अक्रूर, उद्धव, विदुर, अर्जुन आदि यथास्थान बैठे हुए थे तथा भगवान्‌की सोलह हजार एक सौ आठ पटरानियाँ भी विद्यमान थीं। भगवान् शङ्करको देख सभी सभासद् उठ खड़े हुए। स्वयं भगवान् तुरन्त आसन छोड़कर शीघ्रतासे शङ्करका स्वागत करनेके लिये दौड़ पड़े। उन्होंने हाथ जोड़कर शङ्करका स्वागत किया और उन्हें एक दिव्य आसनपर बैठाया। तत्पश्चात् उनकी विधिवत् पूजा करके आगमनका कारण पूछा।†

---

* कनकनी भोम विद्रुमना याभला, रतनजडीत ताहां मोहोल मेडी।

× × ×

नगर श्रीद्वारकां राय रणछोडजी, नित नवा शुभ शणगार साजे।

× × ×

कोटि प्रकाशनुं तेज व्यापी रह्यं, रवि शशि जोत उद्योत भासे।
दधिसुत अर्क ते कोण तांहां बापडा, कोटी रवि कान्ति नखमणि प्रकाशे।

(सामलदासनो विवाह)

† धर्मसभामां जहां उग्रसेन तहां, संकरषणजी संग बेठा।
ताहां वसुदेव ने देवकीनंदन, राजराजेश्वर कृष्ण बेठा॥
अक्रूर ओधव विदुर ने अरजुन, शीघ्र उभा थया हरने जाणी।
सोळ सहस्र शत आठ पटराणियो, मध्य आव्या शूलपाणी॥
धाईने जई मल्या, आसनेथी चल्या,
कर जोडीने कृष्णे सनमान दीधुं।

सदाशिवने उत्तर दिया—'भगवन् ! यह जूनागढ़का एक उच्च ब्राह्मणकुलोत्पन्न वैष्णव भक्त है। इसने सात दिनतक कठोर तप करके मुझे प्रसन्न किया और मैंने इसको वरदानमें अपनी प्रिय वस्तु देनेका वचन दिया है। इसलिये आज मैं इस वैष्णव भक्तको आपके पुनीत चरणकमलोंमें समर्पण करनेके लिये आया हूँ। आप भक्तवत्सल हैं, सदा भक्तोंके अधीन रहते हैं। अतएव आशा है, मेरी प्रार्थना आप अवश्य स्वीकार करेंगे।'

इतना सुनते ही भगवान् श्रीकृष्णने प्रसन्नतापूर्वक भक्तराज नरसिंहरामके सिरपर हाथ रखकर उन्हें स्वीकार कर लिया और भगवान् शङ्कर वहाँसे विदा हो गये। भक्तराज प्रेमसे गद्गद होकर श्रीप्रभुके चरणोंमें लोट गये और अश्रुधारासे उन्होंने श्रीचरणोंको पखार दिया। भगवान्‌ने भक्तराजको सम्बोधित करके कहा—'वत्स ! मेरे और महेश्वरके स्वरूपमें किञ्चिन्मात्र भी अन्तर नहीं है। मैं शङ्करको अपना आराध्यदेव समझता हूं और शङ्कर मुझको। इस प्रकार हम दोनोंके अभिन्न होनेके कारण तुमने जो शङ्करकी पूजा की है, वह वास्तवमें मेरी ही पूजा है।'

'प्रभो ! मैं किस योग्य हूँ ? मैं तो भगवान् सदाशिवकी कृपासे 'श्रीकृष्णः शरणं मम' शब्द भर जान सका हूँ।' इस प्रकार नरसिंहरामने नम्रतापूर्वक निवेदन किया।

'वत्स ! जो मनुष्य मुझे अपना स्वामी समझता है, मैं उसका दास बन जाता हूँ। तुम्हारी नैष्ठिक भक्ति देखकर आज मैं अत्यन्त

प्रसन्न हुआ हूँ।' इतना कहकर भगवान् नरसिंहरामको अपने अन्तःपुरमें ले गये और उन्होंने अपना सारा वैभव नरसिंहरामको दिखाया।*

उस समयसे नरसिंहराम स्वयं श्रीभगवान्‌की सेवामें रहने लगे। उन्हीं दिनों शरद्-पूर्णिमाका समय आ गया और श्रीधाममें रासकी तैयारी हुई।† तत्काल वृन्दावनकी तरह सुरम्य रासमण्डल तैयार हो गया और सोलह सहस्र गोपियाँ और इतने ही भगवान्‌के स्वरूप प्रकट हो गये। उसी समय भक्तराजने भी गोपी-वेषमें अपना राग छेड़ दिया। वह भगवद्गुणगानमें एकदम तल्लीन हो गये। उनके इस भावको देखकर गोपाल अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन्होंने पुरस्कारमें भक्तराजको अपना पीताम्बर ओढ़ा दिया।‡ उसके बाद श्रीभगवान्‌ने शंखध्वनि की और रास शुरू हो गया।

भगवान्‌ने नरसिंहरामके हाथमें दीपक देकर रासमण्डलके बीचमें खड़ा कर दिया। भक्तराज रास देखनेमें तन्मय हो गये। अकस्मात् दीपककी जलती हुई शिखा उनके हाथके वस्त्रमें लग गयी। बस, उनका सारा हाथ दीपककी भाँति जलने लगा। हाथ ही मसाल बन गया परन्तु भक्तराजको इसकी तनिक भी सुध न रही। उनका मन तो श्रीप्रभुके साथ एक हो रहा था, शरीरके

* अन्तरपुरमां मुजने तेडी गया, वैभव कृष्णनो सर्व दाख्यो।
† शरद पुनम तणो दिवस तहाँ आवीओ, रास मरयादनो वेण वाध्यो।
‡ नरसहीए तहाँ ताल साध्यो।
XX सखी रूपे थयो गति गावा।
XX हुं सुखे लागुं गान करवा, प्रसन्न थया गोपाल।
XX प्रेमे पीताम्बर आपीयुं श्रीहरि, रीझिया कृष्णजी ताल वाहातां।

साथ उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं था। अतएव वह एक भावसे अन्ततक रासदर्शन करते रहे, उनका चित्त एक क्षणके लिये भी विचलित न हुआ।

अन्तमें रासलीला समाप्त होनेपर स्वयं भगवान्‌की दृष्टि नरसिंहरामके जलते हुए हाथपर पड़ी। तुरन्त उन्होंने आगे बढ़कर हाथकी आगको बुझा दिया और प्रेमसे हाथ फेरकर उसकी सारी पीड़ा दूर कर दी, भक्तराजकी इस तन्मयताको देखकर रुक्मिणी आदि महादेवियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। माता रुक्मिणीने तो प्रसन्न होकर अपना हार ही उतारकर भक्तराजको पहना दिया। भगवान्‌ने भी भक्तराजकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और 'भक्त नरसिंहको मेरे समान जानो' ऐसा कहकर उन्हें अत्यन्त सम्मान प्रदान किया।

इस प्रकार आनन्दोत्सव, भगवद्दर्शन और भगवत्सेवामें नरसिंहरामको प्रायः एक मास बीत गया; परन्तु उन्हें यह समय एक निमेषसे अधिक नहीं मालूम हुआ। एक दिन वह बैठे-बैठे भगवान्‌की चरणसेवा कर रहे थे कि अचानक उनका ध्यान अपने सौभाग्यपर गया और वह सोचने लगे—'अहा! मैं धन्य हूँ जो मुझे साक्षात् लक्ष्मी तथा देव-मुनियोंको भी दुर्लभ भगवान्‌की चरण-सेवा करनेका सुअवसर प्राप्त हुआ है।····परन्तु ऐसा सौभाग्य मुझे अपनी भौजाईकी ही कृपासे प्राप्त हुआ है; अतएव मुझे उन्हींका उपकार मानना चाहिये।'

भक्तराज इसी विचारमें डूबे हुए थे कि एकाएक उन्हें भगवान्-

की वाणी सुनायी पड़ी। उन्होंने कहा—'वत्स ! तुम्हारी सेवा और एकान्त भक्तिसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। कहो, तुम क्या चाहते हो ?'

नरसिंहरामने निवेदन किया—'भगवन् ! यदि दासकी धृष्टता न समझी जाय तो इससे पहले मेरा एक प्रश्न है। यदि किसी दरिद्र मनुष्यको चिन्तामणि मिल जाय और वह फिर भी सामान्य धनके लिये लालच करे तो उसे क्या कहा जायगा ?'

भगवान्‌ने उत्तर दिया—'असन्तोषी····मूर्ख !'

'तब स्वामिन् ! आप मुझे मूर्ख क्यों बनाना चाहते हैं ? चिन्तामणिके समान अपने चरणकमलोंकी प्राप्ति कराकर फिर आज मुझसे अन्य माँगकी आशा रखते हैं ? नाथ ! मुझे भुलावेमें न डालिये। मैं अब और कुछ नहीं चाहता, मैं अब सदा आपकी चरण-सेवामें ही रहना चाहता हूँ।' नरसिंहरामने नम्रतापूर्वक कहा।

'वत्स ! तुम्हारी निष्ठा धन्य है। परन्तु जगत्‌में प्रत्येक गृहस्थके ऊपर तीन प्रकारके ऋण होते हैं—पहला ऋण है स्त्री-पुत्रादिका, दूसरा पितरोंका और तीसरा देवोंका। मनुष्य गृहस्थाश्रमको स्वीकार करके जबतक उन ऋणोंसे मुक्त नहीं हो जाता तबतक उसे पुनर्जन्म धारण करना पड़ता है। अतः मेरी आज्ञासे मृत्युलोकमें जाकर तुम इन तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाओ।' भगवान्‌ने कहा।

नरसिंहरामको यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ। भगवान्‌से अलग होना उनके लिये असहनीय था। अतः उन्होंने सजल

नेत्रोंसे कहा—'प्रभो ! आपके चरणोंकी धूलि प्राप्त होनेपर भी क्या कोई ऋण शेष रहता है ? नाथ ! ऐसी आज्ञा देकर आप पुनः मुझे संसारमें न फँसाइये । मैं संसारसे त्रसित होकर आपके चरणोंमें आया हूँ । आपके चरणोंसे विमुख होकर मैं पुनः संसारके व्यावहारिक कार्योंमें नहीं फँसूँगा ।'

भगवान्‌ने कहा—'भक्तराज ! सत्य है, मेरी शरण प्राप्त होनेपर जीव तमाम ऋणानुबन्धसे मुक्त हो जाता है । तुम भी अपने ऊपर कोई ऋण न समझो—पर लोकसंग्रहके लिये तो ऋणोंसे मुक्त होना ही चाहिये । तुम जाओ । सब काम मेरी पूजा समझकर करो, साथ ही मेरे विग्रहकी भी अर्चना करो । तुम्हारे-जैसे ऐकान्तिक भक्तके लिये यद्यपि मूर्त्ति-पूजा अनिवार्य नहीं, फिर भी मैं तुम्हे ध्यान-पूजा करनेके लिये अपनी एक प्रतिमा देता हूँ । इस प्रतिमाकी पूजा-अर्चा करने और ध्यान करनेसे तुम्हारी भक्ति और भी दृढ़ हो जायगी । साथ ही यह करताल भी मैं देता हूँ । इस करतालके द्वारा जब तुम मेरा कीर्तन करोगे तभी मैं तुम्हारे पास उपस्थित हो जाऊँगा और तुम्हारे गृहस्थाश्रमके सभी कार्योंको सिद्ध कर दूँगा । मेरा यह प्रण है कि—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

(गीता ९ । २२)

'जो अनन्यभावसे मुझमें स्थित भक्त मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते है, उन नित्य एकीभावसे

मुझमें स्थित पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ ।' जो मनुष्य मेरे इस प्रणको स्मरण रखकर तदनुकूल आचरण करता है, वह गृहस्थाश्रमी होनेपर भी कभी दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता । अतः तुम जूनागढ़में जाकर अनन्यभावसे मेरी भक्ति करो ।'

भगवान्‌के इस प्रकार आश्वासन देनेपर नरसिंहराम राजी हो गये । भगवान्‌ने उन्हें अपनी प्रतिमा और करताल सौंप दी एवं पीताम्बर और मयूर-पुच्छका मुकुट पहना दिया । नरसिंह-रामने भगवान्‌के चरणोंपर गिरकर बार-बार प्रणाम किया और फिर भागवती प्रेरणासे तुरन्त जूनागढ़ जा पहुँचे ।



अनन्याश्रय

प्रातःकालका समय था; भगवान् भुवनभास्करने अपने उषःकालीन प्रकाशसे दसों दिशाओंको सुवर्णमयी बना रक्खा था। इसी समय भक्तप्रवर नरसिंहराम जूनागढ़के समीप गरुड़ासनसे उतर पड़े। उन्होंने एक समीपवर्ती तालाबपर स्नानादि नित्य-क्रियाओंसे छुट्टी पा कुछ देर भगवद्-भजन किया। उसके बाद उन्होंने सोचा—'मैं किसके पास चलूँ? भाई-भौजाईने तो उसी दिन घरसे निकाल दिया था; वे लोग क्यों मेरा स्वागत करेंगे? परन्तु उनके सिवा अपना दूसरा है भी कौन? पहले तो उन्हींके पास चलना चाहिये, चाहे वे मेरा अपमान ही क्यों न करें।'

उनके पास भगवान्की दी हुई प्रतिमा, करताल, मोरपुच्छका

मुकुट और पीताम्बरके सिवा और कुछ तो था नहीं। इन्हीं वस्तुओं-के साथ वैष्णव-वेषमें वह अपने घर आये। उन्होंने बड़ी नम्रताके साथ अपने भाई-भौजाईको प्रणाम किया। उनके इस वेषको देखकर वंशीधरको बड़ा आश्चर्य और साथ ही क्रोध हुआ। उन्होंने कहा—'अरे मूर्ख! तैंने यह क्या बाना धारण किया है? मस्तकपर तिलक, गलेमें तुलसीकी माला, हाथमें करताल, सिरपर मोरपुच्छका मुकुट और कमरमें पीताम्बर—यह सब किसने तुझे पहनाया है? उतार फेंक इस वेषको।'

नरसिंहरामने बड़े विनयके साथ कहा—'भाईजी! यह आप क्या कह रहे हैं? यह वेष स्वयं वैकुण्ठवासी भगवान् श्रीकृष्णजीका दिया हुआ है। मेरे लिये यही उनका परम पवित्र प्रसाद है। भगवान्‌के प्रसादकी अवज्ञा स्वयं भगवान्‌की अवज्ञा है।'

वंशीधरने तिरस्कारपूर्ण शब्दोंमें कहा—'अरे मूर्ख! क्यों पागलपनकी बातें करता है, नादानी छोड़, अब तू लड़का नहीं रहा, दो बालकोंका पिता हुआ। यह भिखारियोंका-सा भेष छोड़कर दो पैसे पैदा करनेका उपाय कर। नात-जातमें क्यों मेरी हेठी कराता है? ये सब चाल छोड़कर ठीक रास्तेपर आ जाय तो अब भी राजासे कह-सुनकर तुझे दस-पाँचकी कोई नौकरी दिला दूँ। इस पागलपनमें क्या रक्खा है? भूखों मरना पड़ेगा।'

'भाई! आप मेरे बड़े भाई होनेके नाते पितातुल्य पूज्य हैं; आपकी बातें मानना ही मेरा धर्म है। परन्तु मै लाचार हूँ। यह वेष मेरे प्रियतम परमात्माका दिया हुआ है। यह मूर्त्ति, करताल, मुकुट, पीताम्बर आदि सभी वस्तुएँ उन्हींसे प्रसादस्वरूप प्राप्त हुई

है । अतः ये मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं । इन वस्तुओंका और इस वेषका त्याग मुझसे जीते-जी नहीं हो सकता । अवश्य ही संसारकी दृष्टिमें यह मेरा पागलपन ही है । दुनियाका चश्मा ही न्यारा है; दुनियाको सयाने मनुष्य दीवाने-से प्रतीत होते हैं, यह इतिहासप्रसिद्ध बात है । क्या प्रह्लादको हिरण्यकशिपुने पागल नहीं समझा था ? क्या विभीषणको रावणने मूर्ख नहीं समझा था ? जहाँ ऐसी बात है वहाँ तो दीवाना बनकर रहना ही श्रेयस्कर है । आशा है, इस ढिठाईके लिये आप क्षमा करेंगे ।' नरसिंहरामने निर्भीकतापूर्वक उत्तर दिया ।

'बेवकूफ ! क्यों व्यर्थ मुझे समझानेकी चेष्टा कर रहा है ? भगवान् कहाँ तेरे लिये रास्ता देख रहे थे कि तू उनसे मिल आया ? तेरे-जैसे अक्लमंदोंको यदि वह दर्शन देने लगें तब तो संसार ही सूना हो जाय, वैकुण्ठमें फिर घुसनेको जगह भी न मिले । अरे कोई धूर्त मिल गया होगा धूर्त—

जैसेको तैसा मिला इसमें कौन नवाई ।
मूरखको मूरख मिला आओ मूरख भाई ॥

—नरसिंह ! अब इस बेवकूफीको छोड़, नहीं तो बहुत पछताना पड़ेगा । नात-गोत, सगा-सम्बन्धी कोई साथ न देगा । लड़कीका विवाह तो हो गया, परन्तु लड़केका विवाह होना मुश्किल हो जायगा और विवाह नहीं होनेसे हमारा कुल भी नीचा माना जायगा ।' वंशीधरने पुनः समझानेकी चेष्टा की ।

'भाईजी ! मुझे तो बस मूरख ही रहने दीजिये; यदि

परमात्माकी भक्ति करनेसे आपका कुल नीचा हो जाता हो तो ऐसे कुलकी मुझे कोई परवा नहीं; मुझे तो भगवान्‌का ········ ।'

अभीतक दुरितगौरी चुपचाप दोनों भाइयोंकी बातचीत सुनती रही; परन्तु अब नरसिंहरामका हठ उसको असह्य हो उठा। उसने बीचमें ही उनकी बात काटते हुए रोषपूर्ण शब्दोंमें कहना शुरू किया—'देखो, बड़ा टीका लगाकर भगतराज आ गये! छोटे-बड़ेका तनिक भी लिहाज नहीं; लाख समझाओ परन्तु अपनी ज्ञानकथनी नहीं छोड़ेंगे। आजतक घरमें झगड़ेका नाम नहीं था, आज आते ही झगड़ने लगा। तेरा ज्ञान तुझे मुबारक हो; हमें तुझे साथ रखकर नात-गोतमें अपनी नाक नहीं कटानी है। या तो यह वेष उतार दे और भले आदमीकी तरह घरमें रह और नहीं तो हमें मुँह मत दिखा। मैंने तुम सब लोगोंका ऋण नहीं खाया है। यदि कुछ भी लाज-शर्म हो तो अपनी कुभार्याको साथ लेकर घरसे निकल जा। इतने दिन न मालूम कहाँ भूखों मरता रहा, अब फिर मेरी जान खानेको आ गया!'

'भाभी! ऐसे कठोर वचन क्यों मुँहसे निकाल रही हो? यदि आपको मेरा कुटुम्ब भारस्वरूप मालूम हो रहा है तो कलसे मै अलग ही हो जाऊँगा। आप व्यर्थ मनमें क्लेश न मानें, मै तो आपको माताके समान मानता हूँ।' नरसिंहरामने विनम्र स्वरमें कहा।

'तू बड़ा टेकवाला है, यह मुझे मालूम है। यदि ऐसी ही तेरी इच्छा है तो फिर कल क्यों? आज ही अच्छा मुहूर्त्त है। फिर

'प्राणेश ! धर्मशालामें तो मुसाफिर और साधु-फकीर रहा करते हैं; गृहस्थलोग धर्मशालामें रहना अच्छा नहीं समझते। फिर हमारी नागर-जाति अत्यन्त द्वेष करनेवाली है; इस बातका भी विचार कर लेना चाहिये।' माणिकबाईने लौकिक व्यवहारकी स्मृति दिला दी।

'प्रिये ! यह संसार भी एक प्रकारकी धर्मशाला ही है। जिस प्रकार इस छोटी-सी धर्मशालामें मुसाफिरोंका आना-जाना बराबर जारी रहता है, उसी प्रकार संसाररूपी विशाल धर्मशालामें भी मुसाफिररूपी अनेक जीवोंका आवागमन लगा रहता है। राजासे लेकर रंकतक सभी मनुष्योंका यही हाल है। इसमें विचार करनेकी कोई बात नहीं।' नरसिंहरामने तात्त्विक ढंगसे समझाया।

'जैसी आपकी इच्छा' कहकर पतिव्रता माणिकबाई चुप हो गयी।

भक्तराज सकुटुम्ब गाँवसे बाहर धर्मशालामें जाकर ठहर गये। उनके परिवारकी एकमात्र सम्पत्ति थी—भगवान्‌की दी हुई प्रतिमा, करताल और मुकुट। सायङ्काल हो जानेपर भक्तराज भगवान्‌की प्रतिमाके सामने बैठकर प्रेमपूर्वक भजन करने लगे। उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बह रहे थे।

प्रायः आधीराततक भजन निरन्तर चलता रहा। उसके बाद भजन बंदकर नरसिंहराम शयनकी तैयारी कर रहे थे कि ठीक उसी समय एक धनाढ्य सेठने नरसिंहरामके पास आकर प्रणाम किया और फिर वह एक ओर बैठ गये।

नरसिंहराम मनुष्यमात्रको 'हरि-जन' समझते थे और इसी-लिये सबको इसी शब्दसे सम्बोधित किया करते थे। उन्होंने कहा—'हरिजन ! आप कहाँ रहते हैं ?'

'भक्तराज ! मैं एक परदेशी महाजन हूँ, आजकल यात्रा कर रहा हूँ। कृपया आप अपना हाल सुनाइये।' सेठजीने संक्षेपमें अपना परिचय देकर प्रश्न किया।

नरसिंहरामने अथसे इतितक अपनी सारी घरबीती सुना दी। साधु पुरुषोंके दिलमें किसीसे कुछ छिपाव तो होता नहीं। सेठजीने उनकी दशापर समवेदना प्रकट करते हुए कहा—'भक्तराज ! आपकी स्थिति सुनकर मुझे बड़ा कष्ट हुआ। यदि आप बुरा न मानें तो मैं आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूँ।'

'सेठजी ! आपकी उदारता धन्य है। मैं आपका आभारी हूँ। परन्तु सबसे पहले मैं आपका पूरा परिचय जानना चाहता हूँ।' नरसिंहरामने आग्रहपूर्वक कहा।

'भक्तशिरोमणि ! यदि आपकी यही इच्छा है तो मैं पहले अपना पूरा परिचय ही देता हूँ। आपसे कोई छिपाव तो है नहीं। मैं अक्रूर हूँ। भगवान् श्रीकृष्णको आपके निर्वाहकी अत्यन्त चिन्ता रहती है। इसलिये भगवान्‌की आज्ञासे मैं आपके पास आया हूँ। आपको जो कुछ चाहिये, उसे निस्संकोच भावसे मुझे सूचित कीजिये।' अक्रूरजीने कहा।

भगवान्‌की अकस्मात् कृपा जानकर भक्तराज गद्‌गद हो गये। उनके मनमें निश्चय हो गया कि भगवान्‌का 'योगक्षेमं वहाम्यहम्'

वचन सर्वथा सत्य है । कुछ क्षण कृतज्ञतापूर्ण हृदयसे भगवान्का स्मरण करके भगवान्की प्रेरणासे ही नरसिंहराम बोले—'महाराज ! रहनेके लिये एक मन्दिर, जीवनरक्षाके लिये कुछ अन्नजल तथा साधुसेवाके लिये आवश्यक सामग्री, इसके सिवा मुझे और क्या चाहिये ?'

'अच्छा, प्रातःकाल होते ही आपके आज्ञानुसार सारी व्यवस्था हो जायगी । फिर तो कोई चिन्ता नहीं रहेगी;' अक्रूरजीने प्रश्न किया ।

'अभी तो कोई चिन्ता नहीं रहेगी । अगर कल ईश्वरेच्छासे कोई नयी चिन्ता उत्पन्न हो जाय तो उसे भगवान् जानें और आप जानें ।' भक्तराजने अपनी ओरसे निश्चिन्तता प्रकट की ।

भक्तराजकी निश्चिन्तता तथा 'जलपद्मवत्' संसारसे निर्लिप्तता देखकर अक्रूरजी दंग रह गये और उनका द्वि-अर्थी उत्तर सुनकर हँसते हुए उनकी वाक्चातुरीकी प्रशंसा करने लगे ।

दूसरे दिन प्रातःकाल नरसिंहराम तो स्नानादि नित्यकर्मोंसे निवृत्त होकर भजन-पूजनमें प्रवृत्त हुए और अक्रूरजी सेठके वेषमें शहरमें जाकर उनका सारा प्रबन्ध करने लगे । उन्होंने एक अत्यन्त सुन्दर मकान उनके रहनेके लिये मोल ले लिया और अन्न, वस्त्र तथा अन्यान्य गृहस्थीकी सारी वस्तुएँ खरीदकर उसमें भर दीं । सारा प्रबन्ध हो जानेपर अक्रूरजीने भक्तराजके पास आकर कहा—'भक्तराज ! आपकी आज्ञाके अनुसार सभी वस्तुएँ तथा मन्दिर तैयार है । आप चलकर देख लीजिये और जैसी राय हो, बतलाइये ।'

'मेरी राय क्या है ? आप जैसा ठीक समझें, वैसा कर दें। आपकी रायमें ही मेरी राय है। केवल हजार-पाँच सौ साधुओंकी पंगत लग सके और भगवान्‌की सेवा-अर्चा हो सके, बस, इतनी व्यवस्था उस मकानमें होनी चाहिये।' नरसिंहरामने कहा।

'आप चलिये न। सब प्रकारकी व्यवस्था हो गयी है।' अक्रूरजीने उत्तर दिया।

भक्तराज परिवारसहित उस मकानमें आ गये। उन्होंने देखा, मकानके अंदर श्रीकृष्ण-मन्दिर, कीर्तनशाला, पाकशाला, भाण्डारघर, अतिथिशाला, सोने-बैठनेकी जगह इत्यादि सब बातोंकी पूर्ण व्यवस्था है। भाण्डारघरमें तीन वर्षतकके लिये पर्याप्त अन्नादि सामग्री भर दी गयी है। किसी वस्तुकी कमी नहीं है।

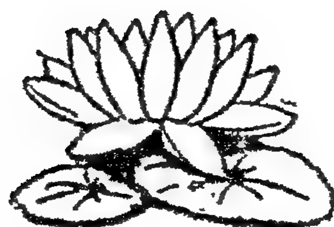
अक्रूरजीने कहा—'भक्तराज! भगवान् श्रीकृष्णजीके आज्ञानुसार मैंने सारी व्यवस्था कर दी है। यह पाँच हजार स्वर्ण-मुद्रा आपको व्ययके लिये देता हूँ। अब आज्ञा दीजिये, मैं विदा होना चाहता हूँ।'

भगवान्‌के जन भगवत्स्वरूप ही होते हैं। परमभागवत नरसिंहराम सहसा कैसे अक्रूरजीको विदा कर देते ? प्रेमाश्रुओंसे उनके नेत्र भर आये, गला रुँध आया। उन्होंने किसी तरह 'जैसी आपकी मर्जी' कहकर उन्हें 'जय श्रीकृष्ण' किया।

अक्रूरजी विदा हो गये। माणिकबाईने रसोई बनायी। भक्त-परिवारने भगवान्‌को भोग लगाकर अमृतस्वरूप प्रसाद ग्रहण किया।

माणिकबाईने बड़े सन्तोष और आनन्दके साथ कहा—'प्राणेश ! आपका वचन तो अक्षरशः सत्य उतरा। आपकी भक्तिके प्रभावसे अपने-आप सारी व्यवस्था हो गयी।'

नरसिंहरामने कहा—'प्रिये! इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। मनुष्यकी रक्षा मनुष्यके द्वारा कभी नहीं हो सकती, जगत्-भरका पोषक स्वयं परमपिता परमेश्वर ही है। जो मनुष्य उसका अनन्य आश्रय ग्रहण कर लेता है, शोक-चिन्ता उसके पासतक नहीं फटकती। फिर मुझे तो भगवान् श्रीकृष्णने वचन दिया है कि 'अनन्यभावसे मेरा चिन्तन करता हुआ जो मनुष्य मेरी उपासना करता है, उस नित्ययुक्त मनुष्यका योगक्षेम मैं वहन करता हूँ।' प्रिये! हमारा कार्य तो बस इतना ही है कि हम अनन्याश्रय होकर उसका भजन-पूजन करते रहें।'



कुँवरबाईका दहेज

भक्तराज नरसिंहरामका जीवन एकान्त भजनमें बीतने लगा। साधु-संतोंके अखाड़ेमें जाना, सत्सङ्ग करना, भजन गाना यही उनका नित्यका कार्य था। यदि कोई भगवद्भक्त उनको अपने घर भजन करनेका आमन्त्रण दे जाता तो वह बड़े उल्लासके साथ रातभर उसके घर जाकर भजन करते रहते। इसके अतिरिक्त उनके घरपर सदा साधु-संतोंका जमघट लगा रहता और वह मुक्तहस्त होकर उनकी हर तरहसे सेवा किया करते। भगवद्भजन और साधुसेवाके अतिरिक्त उनके जिम्मे दूसरा कोई कार्य नहीं था।

बाहरसे आमदनीका कोई जरिया हो नहीं और खर्च खुले हाथों किया जाय तो दूसरेकी तो बात ही क्या, कुबेरके भण्डारका भी अन्त होते देर न लगे। यही कारण था कि भक्त नरसिंहरामको जो द्रव्य और अन्नादि सामग्री अक्रूरजी दे

गये थे, वह सब तीन वर्षकी जगह छः महीनेमें ही साफ हो गयी। यहाँतक नौबत आ गयी कि घरकी एक-एक चीज बेचकर भगवान्का भोग लगाया जाता और साधु-संतोंको सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा की जाती। परन्तु यह अवस्था भी कबतक चलती। थोड़े दिनोंमें ही जो इनी-गिनी एक परिवारके कामके योग्य चीजें थीं, वे भी प्रायः समाप्त हो चलीं। अब परिवारका काम बड़े संकोचसे चलने लगा। परन्तु इतना होनेपर भी भक्तराज एकदम निश्चिन्त थे। स्वप्नमें भी यह चिन्ता उनके शान्त मनको स्पर्श नहीं करती थी कि कल क्या होगा। बस, जैसे चलता था वैसे चलता था और वह अपने नित्यके भजन-कीर्तनमें मस्त थे।

उन्हीं दिनों एक नयी आफत उनके सिर आ गयी। ऊनासे श्रीरंगधर मेहताके कुल-पुरोहित कुँवरबाईको विदा करा ले जानेके लिये आ पहुँचे। उस दिन प्रातःकालसे ही भक्तराज किसी स्थानपर भजन करनेके लिये गये हुए थे।

पुरोहितजीने आकर प्रश्न किया—'मेहताजी कहाँ गये हैं?'

'कहीं बाहर गये हैं; पधारिये महाराज!' रसोई करती हुई माणिकबाईने उत्तर दिया।

पुरोहितजीने भीतर आकर अपना नाम, ठाम तथा आनेका कारण विस्तारपूर्वक सुनाया। माणिकबाईने आसन बिछा दिया और यथोचित आदर-सत्कार किया। पुरोहितजी आसनपर बैठ गये।

माणिकबाई पुत्रीकी विदाई सुनकर मन-ही-मन सोचने लगी—'अब क्या होगा? भक्तराज तो दिन-रात भक्तिमें लीन

रहते हैं, कोई काम-काज करते नहीं। जहाँ नित्य भोजनकी ही चिन्ता लगी रहती है, वहाँ कुँवरबाईके दहेजका क्या प्रबन्ध होगा ? यदि बिना दहेज पुत्रीको विदा कर दूँ तो नात-जातमें बड़ी निन्दा होगी।'

थोड़ी देर बाद मेहताजी घर लौट आये। तबतक रसोई भी तैयार हो चुकी थी, केवल उनके आनेकी ही देर थी। आते ही उन्होंने प्रश्न किया—'सती ! भोगमें अब क्या विलम्ब है ?'

'कुछ देर नहीं, ला रही हूँ' यह कहते हुए माणिकबाई भोगकी सारी सामग्री एक थालमें परोसकर ले आयी। भक्तराजने भक्ति-पूर्वक भगवान्‌को नैवेद्य समर्पित किया। तत्पश्चात् स्वयं प्रसाद पानेकी तैयारी करने लगे। उन्होंने पूछा—'आज कोई साधु-संत आये हैं या नहीं ?'

माणिकबाईने उत्तर दिया—'आज कोई साधु-संत तो नहीं है; एक अतिथि आये हैं।'

'अक्रूरजी तो नहीं आ गये ?' मेहताजीने हँसते हुए कहा।

'नहीं, कुँवरबाईको लिवा जानेके लिये श्रीरंगधर मेहताके पुरोहितजी आये हैं। मैं तो इसी चिन्तामें पड़ी हूँ कि पुत्रीको विदा करने तथा दहेज आदिके लिये कम-से-कम इस समय सौ रुपया चाहिये। परन्तु जहाँ एक भी नहीं, वहाँ सौकी बात भी कैसे की जाय ?' इतना कहते हुए माणिकबाईने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा।

भक्तराज पत्नीको चिन्ताकुल देख बड़ी शान्तिसे समझाने

लगे—'साध्वी! मेरा-मेरा करती हुई तू इतनी चिन्ता क्यों करती है? इन पुत्र-पुत्रीके हम तो नामके माता-पिता हैं, वास्तविक पिता तो हम सबके वह श्रीपति भगवान् ही हैं और वह सब तरहसे समर्थ हैं। फिर हम व्यर्थ क्यों चिन्ता करें? उनको तो स्वयं ही चिन्ता होगी और उनकी जैसी रुचि होगी, वैसा वह ठीक समयपर अपने ही प्रबन्ध कर देंगे।'

'नाथ! कल तो पुत्रीको भेजना होगा और आजतक उसे देनेके लिये एक वस्त्रतकका ठिकाना नहीं। परमात्मा कहाँ रहते है जो ऐन मौकेपर कल आकर उसे सारी वस्तुएँ दे जायँगे? जिसका नाम-ठाम नहीं, उसका विश्वास ही क्या?' चिन्ताके मारे माणिकबाईकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी।

'प्रिये! 'मैं' और 'मेरा' ये दो शब्द ही मायाके रचे हुए जालरूप हैं, दुःखके कारण हैं। संत-वैरागी, योगी-यती, सती और राजासे लेकर रंकतक प्रायः संसारके सभी प्राणी उसी जाल-से बँधकर चौरासीका चक्कर भोग रहे हैं। अतएव अहंता-ममता-का त्याग ही संसारका सच्चा त्याग है। सुनो—

(प्रभात)

'समरने श्रीहरि मेल ममता परी, जोने विचारीने मूळ ताहं।
तुं अल्या कोण ने कोने वळगी रह्यो, वगर समजे कहे म्हारूं म्हारूं॥
देह तारी नथी जो तुं जुगते करी, राखतां नव रहे निश्चे जाये।
देह संबंध तजे अवनवा बहु थशे, पुत्र कलत्र परिवार व्हाये॥
धन तणुं ध्यान तुं अहोनिश आदरे, एज तारे अंतराय मोटी।
पासे छे पीयु अल्या तेने नव परखियो; हाथथी बाजी गयी थयोरे खोटी॥

भरनिद्रा भर्यो रोंधि घेर्यो घणो, संतना शब्द सुणी कां न जागे ।
न जागतां नरसैंया लाज छे अति घणी, जन्मोजन्म तारी खांत भागे ॥

[तात्पर्य—हे मन ! ममताको दूरकर परमात्माका भजन कर; इस संसारमें तेरी कौन वस्तु है, इसका विचार कर । अरे मूर्ख ! तू कौन है ? कहाँसे आया है ? किससे तेरा क्या सम्बन्ध है ? तू विना समझे 'मेरा-मेरा' क्यों वक रहा है ?

जिस देहका तू अनेक युक्तियोंसे जतन कर रहा है, वह कदापि स्थिर रहनेवाला नहीं है । तू अहर्निश जो धनका ध्यान कर रहा है, वह तेरे अन्तःकरणमें बाधास्वरूप है ।

समीपके पति (परमात्मा) को तू क्यों भूल गया ? अहंकारके नशेमें चूर होकर तू मोहनिद्रामें सो रहा है । अतः हे मन ! तू जग जा, नरसिंहरामको तो तेरी बड़ी भारी आशा है (कि तू अच्छी भक्ति करेगा) ।]

भक्तराजने तुरंत यह पद बनाकर सुना दिया । माणिकबाईकी चिन्ता एक बार दूर हो गयी और भगवान्‌में श्रद्धा बढ़ जानेसे उनका चित्त प्रसन्न हो गया । फिर उन्होंने अतिथि और पतिके लिये आसन लगाकर भोजन परोसा । मेहताजी पुरोहितजीके साथ बैठकर भोजन करने लगे ।

भोजन करते-करते पुरोहितजीने वार्तालाप शुरू किया—'मेहताजी ! श्रीरंगधरजी मेहताने मुझे कुँवरबाईको लानेके लिये भेजा है । मैं उनका कुल-पुरोहित हूँ । मै कल ही यहाँसे विदा हो जाना चाहता हूँ । आप कृपाकर शीघ्रता करें ।'

'गुरु महाराज ! इतनी जल्दी करनेसे काम कैसे चलेगा ? अभीतक तो पुत्रीके लिये एक नया वस्त्र भी तैयार नहीं किया है। आपको दो-चार दिन ठहरना पड़ेगा।' माणिकबाईने चट उत्तर दे दिया।

'आपको जो-जो वस्तुएँ तैयार करनी हों, उन्हें आज ही कर लीजिये। कल तो कृपा करके मुझे विदा कर ही दीजिये।' पुरोहितजीने आग्रह प्रकट किया।

'महाराज ! हमें कोई वस्तु तैयार करनेकी चिन्ता नहीं; जो कुछ करना है, उसे मेरे भगवान् करेंगे। परन्तु जबतक मेरी कुल-मर्यादाके अनुसार दहेजका प्रबन्ध परमात्माकी ओरसे नहीं हो जाता तबतक तो आपको ठहरना ही होगा।' भक्तराजने हँसते-हँसते कहा।

भक्तराजकी यह बात पुरोहितजीकी समझमें बिल्कुल नहीं आयी। उन्होंने आश्चर्यके साथ कहा—'मेहताजी ! आप क्या कहना चाहते हैं, कुछ समझमें नहीं आता। आपके परमात्मा कबतक आकर आपकी पुत्रीके दहेजके लिये सामग्री पहुँचा जायँगे ? ऐसी बातें तो न कहीं सुनी गयीं, न देखी गयीं। मालूम नहीं क्यों आप इस तरहकी अनहोनी बात मुँहसे निकाल रहे हैं ?'

'पुरोहित महाराज ! घबड़ाइये नहीं, भगवान्‌की माया तो 'अघटनघटनापटीयसी' कहलाती ही है, उसके लिये कुछ भी अनहोनी नहीं। श्रद्धा रखिये, द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण बड़े भक्त-

वत्सल और दयालु हैं; जो कुछ करेंगे, अच्छा ही करेंगे।' नरसिंहरामने विश्वासपूर्ण स्वरमें कहा।

भक्तराजकी ऐसी विचित्र बात भला पुरोहितजीके कैसे समझमें आती? परन्तु वह कर भी क्या सकते थे? आखिर नरसिंहराम उनके प्रिय यजमान श्रीरंगधर मेहताके सम्बन्धी थे; सहसा उनके विरुद्ध कड़ा व्यवहार कैसे करते? उन्होंने चुप रहना ही उचित समझा।

दो-तीन दिन पुरोहितजी चुपचाप पड़े रहे। परन्तु उन्होने फिर भी कोई विशेष तैयारी नहीं देखी। भक्तराज निश्चिन्त अपने भजन-पूजनमें लगे हुए थे, मानो दूसरा कोई कार्य ही सामने न हो। अन्तमें पुरोहितजीने झुँझलाकर कहा—'मेहताजी! आज तीन-चार दिन मुझे आपके घर बैठे हुए हो गये; परन्तु आप तो बिल्कुल निश्चिन्त होकर भजन-पूजनमें लगे हैं। मैं अब अधिक दिन नहीं ठहर सकता। दहेजका प्रबन्ध हो या न हो, कल कुँवरबाईको लेकर मैं अवश्य विदा हो जाऊँगा।'

'पुरोहितजी ठीक ही कह रहे हैं। पीछे आप सुखपूर्वक भजन करते रहियेगा। पुत्रीके लिये आज ही वस्त्रादि दहेजकी पूरी तैयारी करा दीजिये।' माणिकबाईने भी कहा।

'अच्छा, जब तुम्हारी भी ऐसी ही इच्छा है तो आज अपने नाथका आवाहन करूँगा; देखें, उनकी कैसी कृपा होती है।' नरसिंहरामने सहज भावसे कहा।

सन्ध्यासमय भक्तराज कृष्ण-मन्दिरमें पहुँच गये और हाथमें करताल लेकर भगवान्के भजनमें दत्तचित्त हो गये। माणिकबाई

अन्य वस्तुकी सत्ता ही उनकी दृष्टिमें नहीं रहती, फिर दूसरी ओर ध्यान ही कैसे जाय ?

भक्तराजके पुत्र शामलदासकी अवस्था धीरे-धीरे बारह वर्ष-की हो गयी । माणिकबाईने देखा कि अब लड़का भी विवाहयोग्य होनेको आया और हमारे घरमें खानेका भी ठिकाना नहीं है । गरीबके घर अपनी पुत्री कौन देना चाहेगा ? और कुल-परिवारके लोग भी प्रसन्न नहीं जो इस काममें सहायता करेंगे, वे तो यही कारण दिखाकर उलटे बाधक हो सकते हैं । ऐसी स्थितिमें तो पुत्रका विवाह होना कठिन ही प्रतीत होता है । एक दिन उसने अपनी चिन्ता पतिपर प्रकट की । पतिने कहा—'प्रिये ! तुम व्यर्थ दुःख क्यों करती हो ? चिन्ता छोड़ो, केवल श्रीकृष्णका ध्यान करो, सदा मनमें उन्हींको रक्खो । वह दयालु प्रभु अपने-आप हमारे सारे कार्य यथासमय करते रहेंगे; वह स्वयं हमसे अधिक हमारे लिये चिन्तित होंगे ।'

उन्हीं दिनों गुजरातके वड़नगर नामक शहरके रहनेवाले मदन मेहताकी पुत्रीके लिये एक सुयोग्य वरकी खोज चल रही थी । मदन मेहता एक प्रतिष्ठित नागर गृहस्थ थे । वह स्वयं एक राज्यके दीवानके पदपर थे और आठ-दस लाखकी सम्पत्ति भी उनके पास थी । उनकी रूप-शीलसे युक्त पुत्री जूठीबाई* विवाह-के योग्य हो गयी थी । उन्होंने कई जगह सुयोग्य वरकी खोज की, परन्तु कहीं उनका मन नहीं जमा । अन्तमें कुल-परिवारके लोगोंको एकत्र कर उन्होंने पूछा कि पुत्रीका विवाह कहाँ करना

* कहीं-कहीं उसका नाम 'सुरसेना' भी मिलता है ।

चाहिये। सब लोगोंने राय दी कि आसपास तो आपके योग्य कोई गृहस्थ नहीं। जूनागढ़में हमारी जातिके सात सौ घर बसते हैं अतः वहाँ कोई योग्य घर अवश्य मिल जायगा।

सगे-सम्बन्धियोंकी सलाहके अनुसार मदन मेहताने अपने कुल-पुरोहितको एक सुन्दर, सुशील, कुलीन और गुणवान् वरकी खोज करनेके लिये वाहन तथा द्रव्यादि देकर जूनागढ़ भेज दिया। मदन मेहताके एक सहपाठी मित्र सारंगधर जूनागढ़में रहते थे। अतः उन्होंने उनके नाम एक पत्र भी पुरोहितजीको दे दिया। पुरोहितजीको सब लोग दीक्षित नामसे पुकारा करते थे।

जूनागढ़के जिस मुहल्लेमें नागर लोगोंकी घनी बस्ती थी, उसके बीचमें एक चबूतरा बना हुआ था, जिसपर शामको बहुत-से लोग बैठकर गपशप किया करते थे। उस दिन भी कुछ लोग बैठकर बातें कर रहे थे कि वहाँ दीक्षितजीका रथ आकर खड़ा हुआ। सब लोगोंका ध्यान उस ओर आकृष्ट हो गया। दीक्षितजीने पूछा—'महोदय! सारंगधरजी मेहताका घर कहाँपर है?'

सारंगधर मेहता नागर-जातिका एक प्रतिष्ठित गृहस्थ था। उस समय वह भी वहाँ मौजूद था। उसने उत्तर दिया—'कहिये महोदय! आप कहाँसे पधार रहे हैं, क्या काम है? मुझे ही लोग सारंगधर कहते हैं।'

दीक्षितजीने रथसे उतरकर यजमानकी दी हुई चिट्ठी उसके हाथमें दे दी। चिट्ठी खोलकर वह बाँचने लगा—

दीक्षितजीको आकृष्ट करनेका भरपूर प्रयत्न किया। दरवाजेपर बैठे हुए कुछ गाँवके लोगोंने भी उनकी प्रशंसाका पुल बाँध दिया। जब अतिसुखरायका पुत्र गहने-वस्त्रसे सजकर सामने आया तो दीक्षितजीने उससे भी प्रश्न किया—'तुम्हारा नाम क्या है ?' लड़केने तुतली आवाजमें उत्तर दिया—'त्रि····त्रि····त्रि····द्याधर····र····र····राय।' दीक्षितजीने फिर आगे कुछ न पूछ सारंगधरको उठनेके लिये कहा।

इस प्रकार कई दिनोंतक घूम-फिरकर अपने हित-मित्र और जातिके प्रायः सैकड़ों लड़कोंको सारंगधरने दिखाया। परन्तु दीक्षितजीकी दृष्टिमें एक भी लड़का नहीं चढ़ा। किसीको बधिर, किसीको तुतला, किसीको मूर्ख, किसीको कुरूप इत्यादि एक-न-एक कारण दिखाकर उन्होंने सबको छाँट दिया। स्वयं दीक्षितजी भी अयोग्य लड़कोंको देखते-देखते तंग आ गये। उन्हें सन्देह हो गया कि शायद सारंगधर योग्य वर दिखानेकी अपेक्षा अपने सगे-सम्बन्धी और मित्रोंके लड़के दिखानेकी अधिक चिन्ता रखता है। अब उनका मन सारंगधरपर विश्वास करनेकी गवाही नहीं देता था। परन्तु मदन मेहताने जब सारंगधरको अपना मित्र समझकर उसके पास उन्हें भेजा था, तब वह उसके विरुद्ध कैसे चल सकते थे ? अतएव उन्होंने सारंगधरसे कहा—'मेहताजी ! केवल कुलीन या सुन्दर लड़का मुझे नहीं चाहिये, लड़का गुणवान् भी होना चाहिये। आपने बहुत-से लड़के दिखाये, परन्तु सुयोग्य वर एक भी दिखायी नहीं पड़ा।'

सारंगधर भी इधर दीक्षितजीकी चालसे तंग आ गया था। उसने सोचा—यह बड़ा विलक्षण आदमी है। इसे कोई लड़का पसंद ही नहीं आता। यह अपनेको बड़ा चालाक समझता है। अब मैं भी ऐसा घर बताता हूँ कि यह भी याद रखेगा। सारंगधरने मुसकराते हुए दीक्षितजीसे कहा—'दीक्षितजी! आप मेरी जातिके सैकड़ों लड़के देख चुके। अब मैं अपनी जातिके मुखियाका एक लड़का दिखाता हूँ। मुझे आशा है, वह लड़का आपको अवश्य पसंद आ जायगा। बहुत तरहकी चीजें दिखानेके बाद अच्छी चीज दिखानेपर ही उसका मूल्य ठीक समझमें आता है।'

दीक्षितजीने कहा—'अच्छा, अन्तमें ही दिखाइये, पर दिखाइये सुयोग्य वर, अब अधिक तरहकी चीजें देखनेकी मेरी इच्छा नहीं है। अब तो काम खतम करके मैं शीघ्र वापस होना चाहता हूँ।'

सारंगधरने मनमें मजाकका भाव लेकर दूरसे ही इशारा करते हुए कहा—'वह देखिये, स्वर्ण-कलशवाला जो मन्दिर दिखायी देता है, वह नरसिंहरामजी मेहताका घर है। वह बड़े ही कुलीन और भगवद्भक्त गृहस्थ हैं। उनका व्यवहार बड़ा सच्चा है और उन्होंने धन भी खूब एकत्र कर रक्खा है। उनका पुत्र भी हर तरहसे योग्य है। वहाँ आपको पूर्ण सन्तोष होगा। वहाँ मेरे जानेकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं।'

'अच्छा महाराज! नमस्कार। मैं अभी वहाँ जाता हूँ। यदि सब प्रकारसे सन्तोष हो जायगा तो मैं अवश्य सम्बन्ध कर

दीक्षितजीको शामलदासका मुखमण्डल चन्द्रमाके समान सुकान्ति-युक्त दिखायी पड़ा। उसकी अलौकिक तेजस्वी मूर्त्तिको देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने सामुद्रिकविद्याके अनुसार शामल-दासमें अनेक शुभलक्षण देखे। उन्होंने तुरंत शामलदासके हाथमें श्रीफल तथा स्वर्णमुद्रा देकर ललाटपर तिलक कर दिया। फिर प्रसन्नताके साथ वह बोले—'भक्तराज! मदनरायकी पुत्री जूठी-बाईके साथ आज मैं शामलदासका सम्बन्ध करता हूँ।'

'जैसी परमात्माकी इच्छा' कहकर भक्तराजने अपनी निर्लिप्तता प्रकट की। इतनेमें ही माणिकबाई भी वहाँ पहुँच गयी। पुत्रका सम्बन्ध हो जानेकी बात जानकर माताका हृदय कितना पुलकित हुआ, इसे कौन कह सकता है? इस निर्धनतामें भी अपने इस सौभाग्यकी बात सोचकर आनन्दके मारे उसके नेत्र गीले हो गये।

दूसरे दिन दीक्षितजी बड़नगरके लिये विदा हो गये। उन्होंने बड़नगर पहुँचकर अपने यजमानके सामने नरसिंहरामकी अपूर्व भक्ति, सज्जनता, सच्चाई आदिका खूब बखान किया। शामलदासके रूप, शील और सुलक्षणका वर्णन करते हुए जूठीबाईके सौभाग्यके लिये उसे बधाई दी। मदनरायका सारा परिवार उनके वर्णनको सुनकर बड़ा आनन्दित हुआ। नरसिंहरामकी निर्धनतापर मदन-रायने बड़े उत्साहके साथ कहा कि—'जब कुल-शीलादिमें वह सब तरहसे योग्य हैं तो फिर धनकी कोई चिन्ता नहीं। भगवान्-ने भरपूर दिया है; सात-आठ लाखकी सम्पत्तिमेंसे एकाध लाख भी उन्हें दे देनेसे उनका कष्ट दूर हो जायगा।'



शामलदासका विवाह

जूनागढ़के नागरोंमें यह वात वायुवेगसे फैल गयी कि वड़नगरके मदन मेहताकी पुत्रीके साथ नरसिंहरामके पुत्रका सम्बन्ध हो गया। इस वातको सुनकर नरसिंहरामसे द्वेष रखनेवाले कितने ही नागर ब्राह्मणोंको मानो जूड़ी आ गयी। कहते हैं, दुष्ट लोग अपनी नाक कटाकर भी दूसरेका सगुन बिगाड़ते हैं। जूनागढ़के भी कुछ ब्राह्मणोंने इसी नीतिके अनुसार नरसिंहरामके पुत्रके विवाहमें विघ्न उपस्थित करनेकी ठानी। उन्होंने सारंगधरको अपना अगुआ बनाया और एक पत्र मदन मेहताके नाम लिखकर एक ब्राह्मणके हाथ वड़नगर भेज दिया।

दीक्षितजीके वड़नगर लौटनेके वादसे मदन मेहताने विवाहकी तैयारियाँ शुरू कर दी थीं। मकानकी सजावट हो रही थी;

वारात ठहरानेके लिये स्थान बनाया जा रहा था; बारातके लिये भोजनादिका प्रबन्ध किया जा रहा था: बाजे-गाजेके सट्टे लिखे जा रहे थे; राज्यके बड़े-बड़े श्रीमन्तों, नगरके रईसों तथा सगे-सम्बन्धियोंको निमन्त्रण दिया जा रहा था । इकलौती पुत्रीका विवाह खूब सजधजके साथ करनेके विचारसे सारा प्रबन्ध बड़ी सतर्कताके साथ हो रहा था। इसी बीच जूनागढ़का ब्राह्मण बड़नगर पहुँचा और उसने मदन मेहताको ले जाकर पत्र दे दिया। पत्रमें लिखा था—

श्रीयुत मदनरायजी !

आपकी इकलौती पुत्रीका सम्बन्ध जोड़नेके लिये आपके पुरोहित दीक्षितजी जूनागढ़ आये थे । आपको मालूम होगा कि जूनागढ़में हमारे सात सौ घर हैं; परन्तु उन्होंने किसी योग्य घरमें सम्बन्ध न करके अत्यन्त निर्धन और जातिच्युत नरसिंहरामके पुत्रके साथ सम्बन्ध जोड़ दिया है। हम आपको नम्रतापूर्वक सूचित करते हैं कि वह घर बिल्कुल आपके योग्य नहीं। घर-घर भीख माँगनेवाला तथा जोगी-बैरागियोंका सङ्ग करनेवाला मनुष्य भला बड़नगरके दीवानका कैसे सम्बन्धी हो सकता है ? अत: आप उस सम्बन्धको तोड़कर किसी सुयोग्य वरकी खोज करें, जिसमें आपकी मर्यादाको बट्टा न लगे। विज्ञेषु किं बहुना ।

आपका—

सारंगधर

जूनागढ़के जातिमण्डलकी ओरसे ।

पत्रको पढ़कर मदन मेहता वड़े विचारमें पड़ गये। उन्होंने सोचा कि सम्वन्ध हो गया, विवाहका दिन भी निश्चित हो गया। विवाहकी सारी तैयारियाँ हो गयीं; सर्वत्र आमन्त्रण भी चला गया। इज्जतका मामला ठहरा; क्या किया जाय; अकस्मात् उन्हें एक युक्ति सूझी। उन्होंने सोचा, एक पत्र जूनागढ़ भेज दें; उसके अनुकूल यदि नरसिंहराम आ गये तव तो विवाह करनेमें कोई हर्ज ही नहीं। अगर वह वैसा प्रवन्ध नहीं कर सकेंगे तव आप ही नहीं आवेंगे। दोनों दशाओंमें मेरी प्रतिष्ठा सुरक्षित है। उन्होंने तुरंत पत्र लिखकर एक ब्राह्मणके हाथ नरसिंहरामके पास जूनागढ़ भेज दिया। पत्रमें लिखा था—

सिद्धिश्री अनेक शुभोपमायोग्य श्रीयुत नरसिंहरामजी मेहताको वड़नगरसे मदन मेहताका अनेक नमस्कार पहुँचे। आगे निवेदन है कि आपके सुपुत्र चि० श्रीशामलदासके साथ मेरी पुत्री चि० जूठीवाईका शुभविवाह शुभमिति माघ शुक्ला पञ्चमीको होना निश्चित हुआ है। अतः आप उक्त तिथिपर हाथी, घोड़े, रथ और पैदल—एक चतुरंगिणी वृहत् वारातके साथ पधारियेगा और मेरी मर्यादाके अनुसार वस्त्राभूषण लाइयेगा। अगर वारात और वस्त्राभूषण मेरी मर्यादाके अनुकूल न आये तो मुझे वाध्य होकर अपनी पुत्रीका विवाह अन्यत्र करना पड़ेगा।

आपका—

मदनराय

बड़नगरसे ब्राह्मणने आकर पत्र नरसिंहरामके हाथमें दिया। पत्र पढ़कर वह श्रीकृष्णमन्दिरमें गये और करताल लेकर भगवत्कीर्तन करने लगे। भक्तकी पुकार सुनकर भगवान् प्रकट हो गये। उन्होंने अमृतमयी वाणीसे कहा—'वत्स! तुझे मेरा आवाहन क्यों करना पड़ा?'

भक्तराज गद्गद होकर प्रभुके चरणोंपर लोट गये। फिर उठकर उन्होंने प्रभुके हाथोंमें वह पत्र दे दिया। पत्र पढ़कर भगवान्ने कहा—'वत्स! किसी तरहकी चिन्ता मत करो। मैं जानता हूँ, यह सब जूनागढ़के ब्राह्मणोंकी करतूत है। मैं स्वयं अपने कुल-परिवारसहित नागरोंका वेष धारणकर सारी सामग्रीके साथ बारातमें उपस्थित होऊँगा और तुम्हारा कार्य सम्पन्न कराऊँगा।' इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। धन्य भक्तवत्सलता!

नरसिंहरामने बड़नगरके ब्राह्मणका उचित सत्कार करके विदाई कर दी और आप निश्चिन्त होकर भजन-पूजन करने लगे। माघ शुक्ला प्रतिपदाके दिन वह सिरपर चन्दन लगा, हाथमें करताल ले दस-पाँच साधुओंके साथ पुत्रका विवाह करनेके लिये जूनागढ़-से चल पड़े। इस विचित्र बारातको देखकर माणिकबाईने पतिसे कहा—'स्वामिन्! यही सामग्री लेकर आप एक दीवानके घर जायँगे? कहीं अपमानित होकर बड़नगरसे पुत्रका विवाह करनेके बदले ज्यों-का-त्यों वापस न आना पड़े।' मेहताजीने सरल ढंगसे उत्तर दिया—'प्रिये! तुम बहुत अधीर हो जाती हो। जब मैंने मान

लिया है कि यह मेरा पुत्र ही नहीं है, तब मेरा अपमान कैसा और इसकी चिन्ता क्यों? जिसका यह पुत्र है, वह आप ही सारा प्रबन्ध करेगा और अपमानसे बचनेकी चिन्ता भी करेगा।'

जूनागढ़के नागर ब्राह्मणोंने जब इस अनोखी बारातको देखा तो उनके आनन्दका ठिकाना न रहा। उन्होंने सोचा कि अब अपना काम आप ही बन जायगा। नरसिंहराम और उसके साथी उस दीक्षितकी भी सारी हेकड़ी सहज ही दूर हो जायगी। देखो न इस भिखमंगेकी हिम्मत! ऐरे-गैरे भिखमंगोंकी टोली बनाकर चला है दीवानकी बेटी ब्याहने! इस बार इसकी पोल खुलेगी। बड़नगरमें जब लोग लंगोटी और करताल छीनकर इसकी पूजा करेंगे तब यह सदाके लिये कीर्तन भूल जायगा और हमलोग भी सुखकी नींद सोयेंगे।

परन्तु भक्तराजको काहेकी चिन्ता! वह तो बस कीर्तन करते हुए चले जा रहे थे। कुछ दूर जानेके बाद उन्होंने देखा कि एक बहुत बड़ी बारात डेरा-तंबू डाले पड़ी है। समीप जाकर उन्होंने स्वयं भगवान्‌को गृहस्थरूपमें देखा और उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। फिर भक्तराजने प्रेमभरे स्वरमें कहा—'भगवन्! आप मेरे लिये इतना बृहत् स्वरूप धारण करेंगे और मेरा कार्य सम्पन्न करायेंगे, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था।'

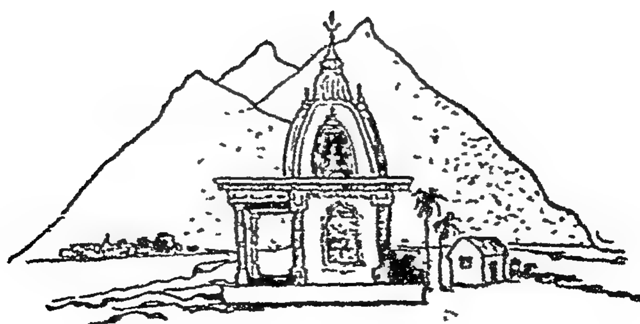
'वत्स! इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है? मैं तो सदा भक्तके अधीन रहता हूँ। भक्त जिस भावसे मुझे भजता है, उसीके अनुरूप मुझे स्वरूप धारण करना पड़ता है। क्या मैंने

और प्रेमपूर्वक आलिङ्गन किया। कुशल-समाचार होनेके वाद मदन मेहताने अपनी धृष्टताके लिये क्षमा माँगी और कहा—'भक्तराज! आपके साथ सम्बन्ध होनेके कारण आज मैं धन्य हो गया।'

'मेहताजी! यह सब प्रभुकी कृपाका ही परिणाम है।' भक्तराजने उत्तर दिया।

मदन मेहताने भगवान्‌के साथ नरसिंहरामका यथाशक्ति आतिथ्य-सत्कार किया तथा विधिपूर्वक वर-पूजन करके अपनी कन्याको दान कर दिया। वड़े समारोहके साथ विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ। मदन मेहताने वस्त्र, अलङ्कार, रत्नादि वहुमूल्य वस्तुएँ दहेजमें देकर पुत्रीको विदा कर दिया।

इस प्रकार प्रणतपाल भगवान् भक्त-पुत्र शामलदासका विवाह-कार्य सम्पन्न करके सकुटुम्ब अन्तर्हित हो गये।



पुत्रकी मृत्यु

जो मनुष्य आज धनवान् है, कल वही कंगाल हो जाता है; जो आज हृष्ट-पुष्ट, नीरोग है, वही कल कई रोगोंका शिकार हो जाता है, अचानक इस जीवनको खो बैठता है। इसीलिये हमारे प्राचीन गुरुजनों तथा महात्माओंने इस संसारकी नश्वरता दिखानेके लिये इसे 'अभ्रच्छाया' की उपमा दी है। यह संसार एक क्षणके लिये भी एक स्थितिमें नहीं रहता—सदा बदलता रहता है। जब संसारकी ही यह दशा है तब संसारमें उद्भूत अन्य वस्तुओं तथा जीवोंकी अवस्थाका क्या पूछना ?

भक्तराज नरसिंहरामपर भी संसारका यह चक्र घूमा। एक दिन जिस शामलदासका विवाह इतने धूम-धामसे किया गया, वह शामलदास विवाहके कुछ ही समय बाद अकस्मात् इस लोकसे सदाके लिये विदा हो गया।

परन्तु संसारमें रहनेपर भी, संसार-सागरकी उत्ताल तरङ्गों-द्वारा आन्दोलित होनेपर भी भगवान्‌के सच्चे भक्त उसके दागसे

वञ्चित रहते हैं; बल्कि सांसारिक दुःखको वे भगवत्कृपा मानकर बड़े उल्लासके साथ वरण करते हैं। क्योंकि उनकी दृष्टिमें दुःख उनके भगवत्-प्रेमको और भी प्रगाढ़ बनाता है। यही कारण है कि कुन्तीने भगवान् श्रीकृष्णसे यह वरदान माँगा था—'हे भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे सदा दुःख ही दीजिये।' फिर परम भागवत नरसिंहरामको ही दुःख क्यों होता? उन्होंने तो पहले ही सब कुछ भगवान्‌का समझ रक्खा था और केवल भगवान्‌को ही अपना बना लिया था। भगवान् श्रीकृष्णका भजन निरन्तर करते-करते उनका हृदय भगवन्मय हो गया था, वह मानो भगवद्भक्तिरूप नौकाद्वारा दुस्तर शोकसागरको पार कर चुके थे। इकलौते पुत्रकी मृत्यु तथा नवविवाहिता पुत्रवधूके वैधव्य-जैसे महान् सांसारिक दुःखसे वह लेशमात्र भी व्यथित न हुए, बल्कि पुत्रशोकाकुला माणिकबाईको सान्त्वना देनेके लिये उन्होंने उस अवसरपर यह पद भी गा दिया—

'भलुं थयुं भांगी जंजाल,
सुखे भजीशुं श्रीगोपाल।'
(भला हुआ छूटा जंजाल,
ससुख भजेंगे श्रीगोपाल।)

पतिकी ऐसी दृढ़ता देखकर और उनके उपदेशसे प्रभावित होकर माणिकबाईका भी शोक दूर हो गया। दोनों पति-पत्नी भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे इस घटनाको एकदम भुलाकर आनन्दपूर्वक भगवद्भजन और साधुसेवामें पूर्ववत् जीवन बिताने लगे।

पिताका श्राद्ध

पुत्रवियोगके प्रायः छः मास बाद पितृपक्ष शुरू हुआ। गुजरात-काठियावाड़में प्रायः सभी लोग पितरोंके निमित्त एकोद्दिष्ट श्राद्ध विधिपूर्वक करके पिण्डदान करते हैं और उस दिन ब्राह्मण-भोजन कराते हैं। नरसिंह मेहताके पिताजीकी श्राद्धतिथि सप्तमी थी। वंशीधरने उस दिन श्राद्ध करनेका निश्चय किया था। अतएव उन्होंने एक दिन पूर्व अपने जाति-भाइयोंको भोजनका निमन्त्रण दे दिया। वह कुलके प्रथानुसार नरसिंहरामके घरपर भी निमन्त्रण देने आये। उन्होंने कहा—'नरसिंह! कल पिताजीकी श्राद्धतिथि है; अतएव मैं तुम्हें सकुटुम्ब भोजनका निमन्त्रण देता हूँ। अपनी स्त्रीको तो आज ही भेज देना; क्योंकि वहाँ कई

तरहका काम-काज रहेगा। तुम भी कल प्रातःकाल सात बजे ही आ जाना, वैरागियोंके अखाड़ेमें एक दिन मत जाना।'

नरसिंहरामने बड़े शान्त चित्तसे उत्तर दिया—'भाई! साधुसंत तो मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। अतः मैं तो साधुओंकी सेवा करके ही आऊँगा। मेरी स्त्री भी भगवान्का नैवेद्य तैयार करनेके पश्चात् कल ही आयेगी।'

'ओहो! भीख माँग-माँगकर साधुसेवा करनेका दम्भ रखनेवालेका इतना मिजाज!........यदि तू इतनी लापरवाही रखता है तो फिर पिताजीका श्राद्ध भी क्यों नहीं कर लेता? 'पास न एक कौड़ी, और बाजारमें दौड़ी'—बस यही तेरा हाल है।' वंशीधर क्रोधसे तमतमाते हुए बोले।

'भाई! जब आपकी आज्ञा है तो मैं अवश्य पिताजीका श्राद्ध करूँगा और अपनी शक्तिके अनुसार दो-चार ब्राह्मणोंको भोजन करा दूँगा। श्राद्धमें सगे-सम्बन्धी तथा जाति-भाइयोंको भोजन कराना पारस्परिक व्यवहार है और उचित भी है; परन्तु हमलोग जो 'श्रद्धया दीयते अनेनेति श्राद्धम्'—इस शास्त्र-वाक्यको भुलाकर केवल नात-जातके लोगोंको स्वादिष्ट भोजन करानेमें ही अपने पितरोंका उद्धार समझते हैं, यह ठीक नहीं।' अपनी स्वाभाविक शान्तिके साथ नरसिंहरामने निवेदन किया।

इतना सुनते ही मानो वंशीधरके जलेपर नमक पड़ गया। क्रोधके मारे उनके नेत्र लाल हो गये और चुपचाप अपने घर आकर उन्होंने सारा हाल दुरितगौरीको सुना दिया। दुरितगौरीका

भी पारा गरम हो गया, उसने देवरका सारा क्रोध अपने पतिपर ही उतारना शुरू किया; बोली—'तो तुम उस मुँहजलेके घरपर गये ही क्यों थे ? मैं तो उन भगत-भगतानीको पहलेहीसे खूब पहचानती हूँ। यदि वे श्राद्धमें न आवें तो हमारा विगड़ ही क्या जायगा ? खजूरे (गिजाई) का एक पैर टूट ही जाय तो क्या वह लँगड़ा हो जायगा ?'

इधर भक्तराजने श्राद्ध करनेका निश्चय तो कर लिया; परन्तु घरमें सेरभर भी अन्नका ठिकाना नहीं था। फिर भी भक्तराज निश्चिन्त थे। वह अपने एकमात्र स्वामी भगवान्‌के सामने बैठकर कीर्तन करने लगे। माणिकबाईने उन्हें निश्चिन्त देख उनके समीप जाकर कहा—'स्वामिनाथ ! कल आपने पिताजीका श्राद्ध करनेका निश्चय किया है और घरमें सेरभर भी अन्न नहीं है। पहले उसका प्रबन्ध करना चाहिये।'

'प्रिये ! पहले मुझे प्रभुका भजन कर लेने दो; उसके बाद मैं बाजार जाकर कुछ सामग्री कहींसे उधार लानेकी चेष्टा करूँगा। यदि उधार नहीं मिला तो फिर मेरे नाथ जानें और पितर जानें।' भक्तराजने उत्तर दिया।

'स्वामिन् ! हम उन परमात्माको नाथ तो मान ही बैठे हैं; परन्तु उनके घर न्याय कहाँ है ? देखिये, भाईके घरपर तो इतनी अधिक सम्पत्ति है और हमें नित्य अपने पेटकी ही चिन्ता लगी रहती है।' इतना कहते-कहते माणिकबाईके नेत्रोंसे अश्रुधारा चलने लगी।

'साध्वी ! तू बार-बार ऐसी घृणित अश्रद्धा प्रकट करते हुए वृथा क्यों भाषण करती है ? आज भी तूने फिर मेरे नाथपर व्यर्थ दोषारोपण कर ही डाला। भगवान् बड़े न्यायी और दयालु हैं। उनके यहाँ पाप-पुण्यका न्याययुक्त बदला दिया जाता है। मेरा दुर्भाग्य है कि मेरी अर्द्धांगिनी होकर भी तेरे अंदर श्रद्धाका अभाव है। प्रिये ! मै बार-बार कह चुका हूँ और आज भी कहता हूँ कि जो सच्चा सोना होता है, उसे ही घर्षण, छेदन, तापन तथा ताड़न आदि दुःखोंको सहते हुए कसौटीपर चढ़ना पड़ता है। स्वर्णकारको भी यही उचित है कि वह लोहादि धातुओंकी परीक्षा न कर खरे सोनेकी ही परीक्षा करे। वास्तवमें आज हम कसौटीपर हैं और ऐसी कसौटी ही मनुष्यत्वकी सच्ची परीक्षा है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि उस परमपिताके दरबारमें कभी भूलकर भी अन्याय नहीं होता।' नरसिंहरामने खूब जोरदार शब्दोंमें पत्नीका समाधान किया।

'नाथ ! क्षमा करें; अब मेरी आँखें खुल गयीं। अब अगर इससे भी अधिक कोई कष्ट आ पड़े तो मैं विचलित न होऊँगी और उस कृपालु जगन्नाथपर पूर्ण विश्वास रखूँगी। मेरे पास यह जो दो मासेका एक सोनेका कर्णभूषण है; इसे बेचकर आवश्यक सामग्री ले आइये और कलका काम चलाइये।' इतना कहते हुए माणिकबाईने आभूषण नरसिंहरामके हाथपर रख दिया। सच्ची अर्द्धांगिनी वही है जो पतिकी आपत्तिमें उसे धैर्य प्रदान करे और उसके दुःखमें स्वयं भाग ले।

धीरज धरम मित्र अरु नारी। आपत काल परखिये चारी॥

'धन नाश होनेपर ही स्त्रीकी परीक्षा होती है ।'

माणिकबाईका आभूषण लेकर नरसिंहराम बाजारमें गये और उसे बेचकर उन्होंने जरूरी चीजें मोल लीं, केवल घृत लेना बाकी रह गया । अन्य सामान लेकर वह घरपर आये । माणिकबाईने सब चीजें देखनेके बाद कहा—'स्वामिन् ! इतनी सामग्रीमें केवल छः-सात मनुष्योंका भोजन हो सकेगा । अतएव आप तीन-चार ब्राह्मणों तथा पुरोहितजीको भोजनका निमन्त्रण दे आइये ।'

मेहताजी नागरोंके चौरेपर आये । वहाँपर जातिके कई प्रतिष्ठित व्यक्ति बैठे थे । भक्तराजको देखकर प्रसन्नराय नामक एक नागर हँसते हुए बोला—'क्यों भक्तजी ! किधरको शुभागमन हुआ है ?'

'भाई ! कल पिताजीका श्राद्ध है; अतएव दो-चार नागर भाइयों तथा पुरोहितजीको भोजनका निमन्त्रण देने आया हूँ ।' नरसिंहरामने सरलतापूर्वक कहा ।

'फिर दो-चार नागरोंको ही क्यों ? बाकी लोगोंका क्या दोष है ? क्या ये सब लोग आपके पिताजीके श्राद्धके अवसरपर आपके घरपर आकर भगवान्का प्रसाद नहीं पा सकते ?' नागर-जातिके पुरोहितने मजाकके ढंगपर कहा ।

'महाराज ! भगवत्प्रसादके तो सभी अधिकारी हैं । परन्तु कल तो मेरे बड़े भाईके घर पितृश्राद्धके निमित्त सारी जातिका निमन्त्रण होगा ही; फिर मुझ अकिञ्चनके घर कौन भाई आना चाहेंगे ?' नरसिंहरामने अभिमानरहित स्वरमें कहा ।

'मेहताजी ! वंशीधरके घरपर जातिभोजनका निमन्त्रण होनेपर भी आपको दुःख माननेका कोई कारण नहीं। आपके घर चलकर हम सब लोग भगवान्‌को समर्पित किया हुआ नैवेद्य अवश्य ग्रहण करेंगे और इस तरह अपने देहको पवित्र करेंगे। आपकी कामना भी पूर्ण हो जायगी।' प्रसन्नरायने वक्रभक्ति प्रकट करते हुए कहा।

किसीकी कीर्तिको कलंकित करनेके लिये दुर्जन अत्यन्त नम्र बन जाते हैं। प्रसन्नरायके इस भावको वहाँ उपस्थित सभी नागरोंने संकेतद्वारा प्रोत्साहित किया। उन्होंने सोचा, आज यदि सारी जातिका निमन्त्रण नरसिंहराम दे दे तो बड़ा अच्छा हो। देखें, कहाँसे यह इतने आदमियोंके भोजनका प्रबन्ध करता है।

किन्तु शुद्ध हृदय मनुष्यको तो सर्वत्र अपनी तरह शुद्धता ही दिखायी देती है। नरसिंहरामने मनमें विचार किया कि जब जातिके सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति भगवत्प्रसादकी अपेक्षा रखते हैं तब उनका अनादर करना उचित नहीं। फिर, एक बार जातिगङ्गाके आगमनसे मेरा घर भी पवित्र हो जायगा। इस प्रकारका भाव मनमें आते ही उन्होंने भगवान्‌का स्मरण किया और सोचा कि निमन्त्रण तो सारी जातिका दे ही दूँ, फिर परमात्माकी जो इच्छा होगी वह होगा ही। बस, उन्होंने पुरोहितजीसे कहा—'पुरोहितजी ! आप सात सौ घरके सभी जातिभाइयोंको भोजनका निमन्त्रण दे आइये। कल सायंकाल श्रीद्वारिकाधीशकी जयध्वनि

करती हुई जाति-मैया मेरी पर्णकुटीको पावन बनावेगी। यह भी एक आनन्दका विषय होगा।'

'जैसी आपकी आज्ञा' कहकर पुरोहितजी उठे और सभी जातिके लोगोंको सकुटुम्ब निमन्त्रण दे आये।

इस निमन्त्रणकी चर्चा सारी नागर-जातिमें फैल गयी। जो जिस तरहका आदमी था, वह वैसी कल्पना करता था, वैसी ही बातें सोचता था। कोई कहता, 'आज लोगोंने भगतको फँसा ही लिया; कभी उसका घर भी देखनेका मौका नहीं मिला था।' कोई कहता, 'अरे, यह सूखा निमन्त्रणभर ही है। गोपीचन्दन और करतालके सिवा उसके घर और रक्खा ही क्या है? वह वैरागी भला सारी जातिको कहाँसे भोजन करावेगा? जब भोजनके समयपर बुलावा आवे तब जानें।' कोई कहता, 'जो हो, हम कोई अन्न बिना मरते तो हैं नहीं! इसी बातसे यह निश्चय भी हो जायगा कि वह सच्चा भक्त है या उसने लोगोंको ठगनेके लिये वेष बना रक्खा है। यदि सच्चा होगा तो सबको भोजनसे सन्तुष्ट करके अपना वचन पूरा करेगा, अन्यथा अपना काला मुँह भी न दिखायगा।' कोई कहता, 'अरे यार! उसने किसी 'अक्लके अंधे गाँठके पूरे' आदमीको अपने जालमें फँसाया होगा और उसीके बलपर आज इतनी उदारता एकाएक उसमें फूट पड़ी है।' इस प्रकार जितने मुँह उतनी बातें होने लगीं।

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही भजनादिसे छुट्टी पाकर नरसिंहराम घीका पात्र लेकर बाजारमें चले। उन वीतराग

श्राद्ध तथा ब्राह्मणभोजनके लिये सारी आवश्यक वस्तुएँ मेहताजीके घरपर पहुँचा दीजिये, मैं भी स्वयं नरसिंहरामका रूप धारणकर वहाँ शीघ्र ही आ रहा हूँ ।

नरसिंहरामको बाजार गये बहुत देर हो गयी थी । माणिकबाई सोचने लगी, क्या हुआ जो घी लेकर नहीं लौटे ? क्या घी नहीं मिला ? अगर नहीं मिला तो फिर श्राद्ध और ब्राह्मणभोजन कैसे होगा ? क्या आज ब्राह्मण दरवाजेपरसे भूखे लौट जायँगे ? ओह ! कितना बड़ा पाप लगेगा ! वह बड़े लापरवाह हैं; मालूम होता है किसी साधु-मंडलीमें जाकर बैठ गये और काम-काज भूल ही गये; नहीं तो वापस तो आ ही गये होते । भगवन् ! कैसे आज लाज रहेगी ?

माणिकबाई इसी चिन्तामें बेचैन थी कि अकस्मात् भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार सेठ-वेषधारी अक्रूरजी सारा सामान छकड़ोंपर लादे लेकर आ पहुँचे । माणिकबाईकी चिन्ता एकाएक दूर हुई और वह बड़ी प्रसन्नताके साथ सारी सामग्री यथास्थान रखवाने लगी । थोड़े समयमें ही स्वयं भगवान् भी नरसिंहरामके रूपमें घी लेकर आ पहुँचे । इस गुप्त रहस्यको कोई जान न सका । माणिकबाईने मेहतारूपधारी भगवान्‌से प्रश्न किया—'इतनी देर कहाँ लगा दी ? मैं बड़ी चिन्तामें पड़ गयी थी । इतना सब सामान कहाँसे प्राप्त हुआ ?'

'सती ! आज पिताजीके श्राद्धके उपलक्षमें सारी नागर-जातिको भोज देनेकी परमात्माकी इच्छा हो गयी; यह सब

सामान उन्हींका दिया हुआ है ।' भगवान्‌ने हर्षके साथ उत्तर दिया ।

'नाथ ! मैं रसोई-पानीका सारा प्रबन्ध करती हूँ; आप शीघ्र पुरोहितजीको बुला लाइये । मध्याह्नका समय हो गया है; अब श्राद्धका कार्य करना चाहिये ।' माणिकबाईने कहा ।

भक्त-वेषमें भगवान् पुरोहितजीके घर पहुँचे । उन्होंने विनीत स्वरमें कहा—'पुरोहितजी ! समय हो गया है; कृपया मेरे घर पधारकर एकोद्दिष्ट श्राद्ध करा दीजिये ।'

इस नश्वर भौतिक जगत्‌में धनवान्‌का ही अधिक मान होता है, सर्वत्र धनवान् ही पूज्य माना जाता है । निर्धन मनुष्य यदि अत्यन्त गुणी भी हो तो उसकी ओर कोई ध्यान भी नहीं देता । यही कारण है कि किसी नीतिकारने यहाँतक कह डाला है कि—

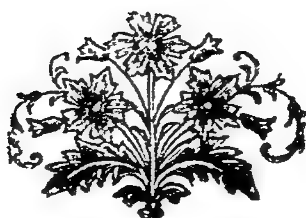
ज्ञानवृद्धास्तपोवृद्धा वयोवृद्धास्तथापरे ।
ते सर्वे धनवृद्धस्य द्वारि तिष्ठन्ति किङ्कराः ॥

अर्थात् ज्ञानी, तपस्वी तथा वयोवृद्ध मनुष्योंको भी धनवान् मनुष्यके द्वारपर किंकरवत् रहना पड़ता है । हमारे भक्तराज भी लोकदृष्टिमें वास्तवमें निर्धन ही तो थे । फिर उनका कार्य करनेके लिये पुरोहितजी कैसे तैयार होते ? उनकी स्थूल दृष्टिमें भी तो सच्चा यजमान वही था जो भरपूर दक्षिणा दे । अतएव उन्होंने स्वार्थमें अन्धे होकर कहा—'नरसिंहराम ! तुम जानते ही हो कि आज वंशीधर भाईका भी निमन्त्रण आया है । फिर उनको छोड़कर तुम्हारे घर कैसे चल सकता हूँ ?'

मैं तो प्रातःकाल ही जो घृत लेनेके लिये गया सो अभी आ रहा हूँ। रास्तेमें एक भक्त मिल गये, उन्हींके यहाँ थोड़ा भजन करके मै अभी आ रहा हूँ। इसीसे मुझे देर भी हो गयी।' नरसिंहरामने विस्मयके साथ कहा।

'तो फिर विधिवत् श्राद्ध करके हजारों मनुष्योंको भोजन किसने कराया। मैंने तो स्पष्ट देखा कि आप ही सब कुछ कर रहे हैं। आप मुझसे मजाक क्यों कर रहे हैं ?' चकित होकर माणिकवाईने कहा।

'प्रिये ! मै मजाक नहीं कर रहा हूँ; मैं तो अभी आ रहा हूँ। अवश्य ही यह सव मेरे प्रियतम श्रीकृष्णका कार्य है। मेरा स्वरूप वनाकर स्वयं मनमोहनने ही मेरे धर्मकी रक्षा की है। भगवान्की कितनी महती दया है !' इतना कहते-कहते दोनों पति-पत्नीके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु वरसने लगे। वे अत्यन्त प्रेममग्न होकर भगवद्भजन करने लगे !



भजनका प्रभाव

आज एकादशीका दिन था। भक्त दम्पतिका नियम था—एकादशीका व्रत रखना और दिनभर भगवद्भजनके अतिरिक्त दूसरा कोई कार्य न करना। अतः आज नित्यकर्मसे निवृत्त होकर दोनों पति-पत्नी भजनमें संलग्न हो गये। अन्य दिन तो भोजनादि-का कुछ झंझट रहता था जिससे भजनमें कुछ बाधा पड़ ही जाती थी। आज उससे भी छुट्टी थी। अतएव और दिनोंसे आज कहीं अधिक आनन्द था; निश्चिन्त रूपसे दोनोंका भजन चल रहा था।

आजकल धार्मिक कार्योंमें श्रद्धा न रखनेवाले बहुत-से नव-शिक्षित युवक एकादशी आदि व्रतोंके दिन उपवास रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं समझते। उनकी दृष्टिमें यह सब बातें स्वास्थ्यके

'भैया ! इस कामके लिये विनती करनेका क्या प्रयोजन ? भगवान्‌का भजन करना तो मेरा काम ही है। फिर स्वयं भगवान्‌ने कहा है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

जिस स्थानपर भगवान्‌का भजन होता है, वह साक्षात् वैकुण्ठलोक ही है। जो मनुष्य भगवान्‌का नाम लेता है वह हीन-जातिका होनेपर भी देवसमान है। और जो मनुष्य भगवद्भजन-के प्रभावको जानकर भी भगवान्‌से विमुख रहता है, वह उच्च-कुलमें उत्पन्न होनेपर भी आत्महत्याके महान् पापका भागी बनता है। भगवान्‌का भजन करने तथा श्रवण करनेका ब्राह्मणसे लेकर चाण्डालपर्यन्त सबको समान अधिकार है। श्रीमद्भगवद्गीतामें तो ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें भी समदृष्टि रखनेवाले ही सच्चे ज्ञानी बतलाये गये हैं। सामाजिक आचार-विचारमें भेद है और वह रहना भी चाहिये, इसीसे भगवान्‌ने समान दृष्टि रखनेकी बात कही है। सब बातोंमें समान बर्तावकी नहीं। परन्तु भजनका तो सभीको अधिकार है। अतः तुम अपने आँगनमें तुलसी-चबूतरे-के समीप गोबरसे जमीनको लीप-पोतकर भजनकी तैयारी करो। मैं तुम्हारी इच्छानुसार आज रातको तुम्हारे आँगनमें ही भगवान्‌का भजन करूँगा।'

इस प्रकार अन्त्यज भक्तको वचन दे नरसिंहराम अपने घर आये। अन्त्यज भक्तने भी आज्ञानुसार सब तैयारी की तथा अन्य साधु-संतों और भक्तोंको भी आमन्त्रित किया। नरसिंहराम अपने घरपर

भगवान्‌का पूजन करके, करताल-मृदंग आदि भजनकी सामग्री लेकर अन्त्यज भक्तके आँगनमें उपस्थित हुए और भजन करने लगे। वह वाहरी संसारको पूर्णरूपसे भूलकर भगवत्प्रेममें मस्त हो गये थे। उनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रुकी धारा निरन्तर वह रही थी; वह अधिकाधिक उत्साहके साथ कीर्तन करते जाते थे। उनके आसपास वैठे हुए श्रोता मन्त्रमुग्ध सर्पकी भाँति एकाग्र होकर भजनानन्द लूट रहे थे। उस समय वहाँपर मानो शान्ति, पवित्रता और आनन्दका ही साम्राज्य फैल रहा था। इस प्रकार रातभर भक्तराज भजन करते रहे।

उधर घरमें माणिकवाईके ज्वरने धीरे-धीरे भीषण रूप धारण कर लिया। उस समय उनकी परिचर्या करनेवाला घरमें कोई नहीं था। वह भी निरन्तर भगवन्नामकी ही रट लगाये हुए थी, यहाँतक कि वेहोशीकी हालतमें भी उसकी जिह्वा भगवान्‌को ही पुकार रही थी, मानो उसने संसारसे सारा सम्बन्ध तोड़कर समाविस्थ अवस्थामें केवल भगवान्‌से ही सम्बन्ध जोड़ लिया था। प्रातःकाल भजन समाप्त कर जब नरसिंहराम घर आये तो देखा कि पत्नी मरणासन्न अवस्थामें है, केवल अन्तिम साँसें गिन रही है। नरसिंहजी पत्नीकी यह हालत देखकर उसकी सेवामें लग गये। और भगवन्नाम सुनाते हुए यथासाध्य उसकी शुश्रूषा करने लगे परन्तु भगवान्‌का विधान कुछ और था। पतिके आनेपर उसने एक वार आँखें खोलकर उनके दर्शन किये और अन्तिम वार भगवान्‌के नामका जोरसे उच्चारण करके इस मर्त्यलोकसे सदाके लिये नाता तोड़ लिया। उस समयका दृश्य वज्रहृदय मनुष्यको भी पिघलानेकी

शक्ति रखता था। फिर इकलौते नवविवाहित युवक पुत्रकी मृत्यु तथा प्रौढ़ अवस्थामें सहधर्मिणीका देहान्त—दोनों विपत्तियोंका एक साथ आना संसारमें दुःखकी परमावधि ही कही जाती है। परन्तु फिर भी वीतराग भक्तप्रवर नरसिंह मेहता एकदम स्थिर और शान्त थे। वह वास्तवमें इस जन्म-मरणमय संसारमें रहते ही कहाँ थे। जो यहाँके दुःख-शोक उन्हें स्पर्श करते? वह तो सदा किसी दूसरे ही दिव्यलोकमें निवास करते थे, जहाँ निरन्तर एकरस आनन्द प्रवाहित होता रहता है।

पत्नीका वियोग देखकर भक्तराजने विचार किया कि इस संसारमें जिस वस्तुके साथ रहनेके कारण मैं संसारी कहलाता था, आज उस वस्तु—स्त्रीको भी परमात्माने मुझसे अलग कर दिया; भगवान्‌ने यह अनुग्रह ही किया। भजन करनेमें सहायता देनेवाली संगिनीका वियोग हो गया, परन्तु सम्भव है इससे भजन और भी बढ़े। फिर मनुष्यको उचित है कि गयी बातका शोक न करे, भगवान्‌की इच्छासे जो कार्य होता है, वह न्यायपूर्ण और मङ्गलमय ही होता है। दुःख आ पड़नेपर शोक करनेसे मनुष्यको मिल भी क्या सकता है? गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने भी यह आज्ञा दी है कि—

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥

(१२।१७)

अर्थात् 'जो कभी हर्षित नहीं होता, द्वेष नहीं करता, शोक नहीं करता, कामना नहीं करता तथा जो शुभाशुभ कर्मोंके फलका

त्यागी है, वह भक्तिमान् पुरुष मुझे प्रिय है।' अतः इस संसारका क्षणिक सुख आनेपर हर्ष और दुःख आनेपर शोक करना भगवदाज्ञाका उल्लङ्घन करना है। इस प्रकार विचारकर उन्होंने शान्तचित्त होकर पत्नीका विधिपूर्वक अग्निसंस्कार किया तथा शेष अस्थियोंको गङ्गाजीमें बहाकर अपने घर आये।

× × ×

इधर अन्त्यजके घर कीर्तन करनेका समाचार नागर-जातिमें फैल गया। दुर्जन मनुष्य परच्छिद्रान्वेषणमें तो चतुर होते ही हैं, येन केन प्रकारेण अन्य मनुष्योंके साथ द्वेष करनेमें ही वे अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझते हैं। इस तरहके नागरोंको नरसिंहरामकी निन्दा करनेका एक अच्छा बहाना मिल गया। नागरोंके चौरेपर नरसिंहरामकी चर्चा जोरोंसे शुरू हो गयी।

'चाचाजी! उस भगतने तो अब जातपाँतकी मर्यादाको भी रसातल पहुँचा दिया। वह अब हदसे बाहर जाने लगा है। हमारा दुर्भाग्य है जो हमारी जातिमें ऐसा बगुला-भगत पैदा हुआ।' एक नागर युवकने श्रीगणेश किया।

'आखिर बात क्या है? स्पष्ट क्यों नहीं कहते? क्या तुम उस जादूगरसे डरते हो?' सारंगधर मेहताने गम्भीरतापूर्वक कहा।

'क्या आपने नहीं सुना? यह तो सब लोग जानते हैं कि कल वह भजनका बहाना करके रातभर एक ढेढके घर निस्संकोच पड़ा रहा। अब तो उसे कोई कुछ कहनेवाला भी नहीं है।

यदि वह यों ही करता रहा तो वस, समस्त नागर-जातिका सत्यानाश हो जायगा।' वीचमें ही प्रसन्नरायने तिलको ताड़ वनाकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

चौरेपर उपस्थित सभी नागरोंमें कोलाहल मच गया। सव लोग इस घटनापर अपनी-अपनी राय देने लगे! एक वृद्ध नागरने कहा—'वस, अव कलियुगका पूरा प्रभाव फैल गया; उच्च कुलोत्पन्न ब्राह्मण अन्त्यजके घर जाकर रातभर वैठा रहा! पृथ्वी माता कैसे ऐसे पापका वोझ सहन करेगी? मेरे-जैसे वृद्धोंका तो अव संसारमें जीना ही निरर्थक है।' एक दूसरे वृद्धने कहा—'यदि ऐसा अधर्म होने लगेगा तो थोड़े समयमें ही प्रलय हो जायगा।' एक तीसरे नागरने अपना फैसला सुनाया, 'तो फिर ऐसे पतितोंका पाप हम कवतक देखते रहेंगे? आजसे ही उसे जातिसे वाहर कर देना चाहिये, आप ही उसका मिजाज ठिकाने आ जायगा।'

कुछ लोगोंने कहा कि 'वह तो भजन करने गया था, वहाँ कोई खान-पानकी वात तो थी नहीं फिर क्यों ऐसा किया जाता है?' परन्तु नगाड़ेके सामने तूतीकी आवाज़ कौन सुनता?

उपस्थित सभी जाति-नेता इस वातपर सहमत हो गये। सवने यह निश्चय किया कि आजसे नरसिंह मेहता जातिच्युत समझा जाय और उसके साथ खान-पान आदि व्यवहार वंद कर दिया जाय। इस प्रकार भक्तराजको जातिसे वहिष्कृत करके जाति-नेताओंने अपनी दृष्टिसे अपनी जातिकी पवित्रताकी रक्षा की और इससे उन्हें वड़ा सन्तोष हुआ।

दूसरे दिन कृष्णराय नामक एक नागरकी माताके एकादशाह श्राद्धके निमित्त जाति-भोज था। जातिभरके आबाल-वृद्ध सब लोग निमन्त्रित किये गये थे; केवल बहिष्कृत होनेके कारण नरसिंह मेहताको निमन्त्रण नहीं दिया गया था। सन्ध्यासमय कृष्णरायके घर सभी नागर एकत्र हुए और पवित्र वस्त्र धारणकर भोजनके लिये पंक्ति लगाकर बैठे।

भक्तराज नरसिंहरामको सम्भवतः अभी इस बातका पता भी नहीं था कि मैं जातिच्युत किया गया हूँ। उन्हें कहाँ फुरसत थी जो इस ओर वह ध्यान देते? सच्चे भगवद्भक्त तो एक क्षणके लिये भी अपने प्रभुको भुलाकर दूसरी ओर ध्यान देना मरणसे भी अधिक दुःखदायी समझते हैं। परन्तु अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार भगवान्‌को तो चिन्ता रहती ही है। भगवान् अपना अपमान तो सह लेते हैं, परन्तु भक्तोंका अपमान कदापि नहीं सह सकते। उन्होंने नागरोंको भी भक्तराजके अपमानका बदला देना उचित समझा। उन्होंने तुरंत अपनी विचित्र माया फैलायी। जब नागरोंकी पंक्तिमें भोजन परोस दिया गया और उन्होंने भोजन करना शुरू किया तब प्रत्येक नागरने अपने बगलमें एक अन्त्यजको बैठे देखा। इस दृश्यको देखकर सभी नागर बड़े आश्चर्यमें पड़ गये और भोजन छोड़कर भागने लगे!

जातिके अगुआ सारंगधरने चिन्तित होकर कहा—'अनन्तराय! गजब हो गया! इन अन्त्यजोंके साथ भोजन करके तो आज हम सभी पापके भागी हो गये! अब क्या किया जाय?

हमलोगोंको तो गङ्गास्नान करके प्रायश्चित्त करना पड़ेगा । इस पापसे छूटनेका क्या कोई और उपाय है ?"

'सारंगधरजी ! भक्त नरसिंहरामको जातिच्युत करनेका ही यह परिणाम मालूम होता है । अब तो अपने कियेका हमें फल भोगना ही पड़ेगा ।' अनन्तरायने कहा ।

'तो क्या यह सब उसी जादूगरके हथकंडे हैं ?' सारंगधरने उत्सुकतापूर्वक पूछा ।

'नहीं भाई ! ऐसी बात नहीं है । नरसिंहराम भगवान् श्रीकृष्णके एकनिष्ठ सच्चे भक्त हैं । प्रायश्चित्तद्वारा हम अन्य पापोंसे तो कदाचित् छूट सकते हैं; परन्तु एक सच्चे भक्तके प्रति किये गये अपराधरूप पापसे गङ्गास्नान करने या अन्य प्रायश्चित्त करनेसे कदापि हमें मुक्ति नहीं मिल सकती । यदि मेरी बातपर किञ्चित् भी विश्वास हो तो शीघ्र उन वीतराग महात्माके चरणोंमें प्रणाम करके उनसे क्षमायाचना करो तथा उन्हें जातिमें मिलाकर अपने साथ भोजन कराओ । हमारे अपराधका यही प्रायश्चित्त है ।' अनन्तरायने स्पष्टरूपमें सुना दिया ।

अनन्तराय नरसिंहरामके मामा लगते थे । विद्वत्ता, वाक्पटुता तथा नम्रता आदि सद्गुणोंके कारण समग्र जातिमें उनका बड़ा मान था, अतः जातिके सब लोगोंको उनके वचनोंपर विश्वास हो गया । जातिके दो-चार प्रतिष्ठित पुरुष उसी समय नरसिंहरामके घर गये । उस समय नरसिंहराम भगवान्को नैवेद्य समर्पित कर

रहे थे । आगन्तुक जाति-नेताओंने उन्हें वन्दना करके क्षमा-याचना की तथा जातिभोजमें सम्मिलित होनेकी प्रार्थना की ।

'भाइयो ! आप इतनी विनय क्यों कर रहे हैं ? ऐसी प्रार्थना तो भगवान्से ही करनी उचित है; मै तो आपलोगोंका एक तुच्छ सेवक हूँ, मेरे अंदर कोई विशेषता नहीं ।' नरसिंह मेहताने नम्रतापूर्वक निवेदन किया ।

वास्तवमें जो सच्चे भक्त होते हैं, वे भूल करके भी अभिमान नहीं करते । वे तो—

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥
(६ । ९)

अर्थात् 'जो पुरुष सबका हित करनेवाले सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी और बन्धुजनोंमें तथा धर्मात्माओंमें भी समान भाव रखनेवाला है, वह अति श्रेष्ठ भक्त है ।'—गीताके इस श्लोकके अनुसार सबमें समान भाव रखते हैं । नरसिंहराम भी सच्चे भगवद्भक्त थे । उन्होने तुरंत जातिभोजमें सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया । जब नरसिंहराम भी जाकर पंक्तिमें बैठ गये तब पहले-का दृश्य दूर हो गया और सब लोगोंने प्रसन्नतापूर्वक भोजन किया ।

इस प्रकार भगवद्भजनके प्रभावसे नरसिंहराम जाति-बहिष्कार-की विपत्तिसे बच गये और उनके विरोधियोंको नीचा देखना पड़ा !



शामलशाहपर हुंडी

स्वार्थमय संसारमें धनवान्-धनहीन, दाता-कृपण, विद्वान्-मूर्ख, कुलीन-अकुलीन एवं सज्जन-दुर्जनका मानो परम्परागत वैर चला आ रहा है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भी दैवी तथा आसुरी सम्पत्तिमें परस्पर विरोध बतलाया गया है। परन्तु यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उस वैरमें यह बात भी उसी तरह निश्चित है कि अन्तमें दैवी पक्षकी विजय और आसुरी पक्षका पराजय होता है।

दैवीसम्पत्तिसम्पन्न नरसिंहराम भी आरम्भसे ही यह युद्ध लड़ते आ रहे थे और उसमें लौकिक और पारमार्थिक दोनों दृष्टियों-से उन्हींकी विजय भी होती आ रही थी। उन्हें पुनः एक संकट-का सामना करना पड़ा। उनकी पत्नीको मरे प्रायः नौ दिन बीत

चुके थे। अब उनका श्राद्ध करने और उस अवसरपर ब्राह्मणों तथा जाति-भाइयोंको भोजन करानेकी आवश्यकता आ पड़ी थी। परन्तु वह भगवान्‌के भरोसे निश्चिन्त थे।

नागर-जातिके प्रमुख व्यक्ति उनके पास आते थे और सारी जातिको एकादशाह और द्वादशाह दोनों दिन भोजन करानेपर जोर दे रहे थे। परन्तु नरसिंहराम 'परमात्माकी जैसी इच्छा' कहकर बात टाल दिया करते थे। एक दिन प्रातःकाल ही सारंगधर नामक एक प्रमुख नागर उनके यहाँ उपस्थित हुए। उन्होंने आते ही 'जय श्रीकृष्ण' कहकर भक्तराजका अभिवादन किया। भक्तराजने भी 'जय श्रीकृष्ण' कहकर अभिवादनका उत्तर देते हुए कहा—'पधारिये सारंगधरजी! आज तो आपने मेरी पर्णकुटी पावन की।'

इस प्रकार शिष्टाचारकी दो-एक बातें होनेके बाद सारंगधर बोले—'नरसिंहराम! आज मैं तुम्हें एक सलाह देनेके लिये आया हूँ। तुम उच्चकुलके पुरुष हो, अपने कुलकी प्रथाके अनुसार तुम्हें माणिकबाईके निमित्त एकादशाह और द्वादशाह दो दिन जाति-भोज देना चाहिये। इससे कम करनेसे तुम्हारी मर्यादामें बट्टा लगेगा।'

'सारंगधरजी! आप ठीक कहते हैं; परन्तु इसमें कुलकी प्रथाका कोई खयाल नहीं। यह बात अपनी वर्तमान अवस्थापर निर्भर करती है। शक्तिके बाहर कोई काम करना ठीक नहीं। मैं तो बस दो-चार साधु-संतोंको………।'

सारंगधरने बीचमें ही बात काटते हुए कहा—'हँ ! पागल हो गये हो क्या नरसिंहराम ? दो चार भगत-भिखारियोंको भोजन करानेसे थोड़े ही तुम्हारी पत्नीका कल्याण होगा ? जाति-गङ्गाको तृप्त किये बिना उस बिचारीको कैसे सद्गति प्राप्त होगी ? वह बिचारी क्या कुछ साथ लेकर गयी है ? अब यही तो उसका अन्तिम नाता है। उसके नामपर तुम इतना भी नहीं कर सकते ? बार-बार थोड़े ही करना है ?'

'भाई ! आपका कहना तो यथार्थ है। मरनेवाला व्यक्ति अपने साथ कुछ ले नहीं जाता और उसके नामपर यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन कराना उचित भी है। परन्तु यह कोई जरूरी नहीं कि अपनी शक्तिके बाहर कई दिनोंतक अधिकाधिक आदमियोंको भोजन कराया जाय। श्रद्धापूर्वक जो कुछ किया जाता है, वही श्राद्ध कहलाता है। उस आत्माके नामपर श्रद्धापूर्वक जितने ही लोगोंको भोजन कराया जायगा, उतनेसे ही उसे शान्ति मिलेगी और उसकी सद्गति होगी। जाति-व्यवहार भी ठीक ही है; परन्तु साधुओं और अनाथोंकी सेवा उससे कहीं अधिक महत्त्व रखती है। जाति-भोज तो अधिकतर व्यवहारका विषय है।' नरसिंहरामने उत्तर दिया।

सारंगधर उपदेश लेने तो आये नहीं थे; वह तो समस्त जातिकी ओरसे पञ्च बनकर आये थे और उन्हें अपना काम बनाना था। अतः वह शीघ्र ही नरसिंहरामको छोड़नेवाले नहीं थे।

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।

इस न्यायके अनुसार नरसिंहरामके उपदेशोंका उनपर उलटा

ही असर हुआ और उन्होंने भीषण रूप धारण कर लिया। उन्होंने कहा—'नरसिंहराम ! ऐसा ज्ञान किसी लंगोटीधारी साधुको ही देना। आजतक तुमने जातिमें रहकर सबके घर भोजन किया है और आज जब अपने खिलानेका अवसर आ पड़ा है तब छटकना चाहते हो। ऐसा कदापि नहीं हो सकता। मैं कहे देता हूँ, कलसे दो दिनतक तुमको जाति-भोजन कराना ही पड़ेगा; इसके लिये चाहे इस घरको बेच दो या अपनी स्त्रीके गहनोंको।'

सारंगधरकी बात सुनकर सरल स्वभाव नरसिंहरामने भगवन्नामका जप करते-करते मस्तक हिलाकर हामी भर दी। बस, फिर क्या था ? सारंगधरका विजयडंका बज गया। वह अपनी विजयपर फूला हुआ अपने घर वापस लौट गया।

सारंगधरके चले आनेपर भक्तराज सोचने लगे—'मैंने जाति-भोजन करानेके लिये हाँ तो कह दिया; किन्तु अब इसको पूर्ण करना तो श्यामसुन्दरके ही अधीन है। जैसी उनकी इच्छा होगी, करेंगे। व्यर्थ चिन्ता करके समयका दुरुपयोग करनेसे क्या लाभ ?' यह सोचकर वह भगवान्‌के ध्यानमें मग्न हो गये।

इधर चौरेपर बैठकर नागर-जातिके कुछ प्रमुख लोग आपसमें गपशप लड़ा रहे थे। इसी समय चार यात्री वहाँ आये और उन्होंने नम्रतापूर्वक पूछा—'भाइयो ! इस नगरमें ऐसा धनवान् कौन व्यापारी है जो हमारे सात-सौ रुपये लेकर द्वारिकाकी एक हुंडी लिख दे ?'

हुंडी लेकर चारों यात्री वहाँसे रवाना हो गये। भगवान्‌को नैवेद्य समर्पित कर भक्तराज भगवान्‌से विनय करने लगे, 'हे भक्तवत्सल भगवन्! आपके ही विश्वासपर मैंने हुंडी लिखी है। क्या आप उसे स्वीकार करके मेरी प्रतिष्ठाकी रक्षा नहीं करेंगे? नाथ! मैं तो समझता हूँ कि उससे मेरी प्रतिष्ठामें तो किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचेगी; बल्कि जगत्‌में आपकी ही हँसी होगी। दयालु दामोदर! क्या आपको खबर नहीं है कि कलसे दो दिनपर्यन्त सारी जातिको भोजन कराना पड़ेगा? इसी कारण मैंने यह धृष्टता की है, और वह भी केवल सात सौ रुपयोंके लिये। जगन्नाथ! आपके भण्डारमें सात सौ रुपयोंकी क्या बात है? आपने मरणोन्मुख गजेन्द्रको प्राणदान दिया था, सती पाञ्चालीको भरी सभामें अक्षय चीर प्रदान करके उसकी लाज बचा ली थी। इतना ही नहीं, प्रत्युत मेरे ही पुत्रके विवाहमें, पिताजीके श्राद्धमें तथा अन्य व्यावहारिक प्रसङ्गोंपर आपने मेरी सहायता की है। क्या इन सात सौ रुपयोंका प्रबन्ध आप नहीं कर सकेंगे?'

प्रार्थना करते समय भक्तराजके नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह चल रहा था। इतना कहकर वह भगवान्‌की प्रतिमाके चरणोंमें लोट गये। वह कबतक इस स्थितिमें पड़े रहे, इसकी उन्हें स्वयं भी खबर न रही।

दूसरे दिन प्रातःकालसे ही जातिभोजकी तैयारी होने लगी। आवश्यक सब सामग्री बाजारसे आ गयी और बड़ी धूमधामके साथ दो दिनोंतक लगातार जाति-भोजन होता रहा। जातिभरके सब लोग बड़े सन्तुष्ट हुए।

× × ×

चारों तीर्थयात्री यथासमय द्वारिका पहुँच गये । उन्होंने भगवान् द्वारिकाधीशके दर्शन करनेके पश्चात् हुंडीका रुपया लेनेके लिये सेठ शामलशाह वसुदेवकी खोज करना शुरू कर दिया । बाजारमें पूछनेपर किसीने उस व्यापारीका पता नहीं बतलाया । तीर्थयात्री बड़े चक्करमें पड़े । उनके मनमें शंका हुई, उन्होंने सोचा, कहीं उस भगतने हमलोगोंके साथ ठगी तो नहीं की । यदि ऐसा हुआ तो ?·······जूनागढ़में तो उसका घर है ही; वहाँसे कहाँ जायगा ? वहाँ तो उसे रुपया देना ही पड़ेगा । परन्तु वह देखनेमें तो सत्पुरुष मालूम होता था——वह धोखा कैसे दे सकता है ? लेकिन यहाँ तो शामलशाह सेठका कोई नाम-निशान भी नहीं है ।

इस तरह विचार करते हुए उन्होंने सेठकी खोज करनेमें सारा दिन व्यतीत कर दिया, परन्तु किसी मनुष्यने उस सेठका नाम-निशानतक नहीं बतलाया । यात्री बड़े निराश हुए । उन्होंने सोचा, अब यहाँ सेठका पता मिलना कठिन है । जूनागढ़ चलकर रुपया वसूल करना चाहिये ।

दूसरे दिन अमावस्याका पर्व होनेके कारण द्वारिकामें यात्रियोंकी बड़ी भीड़ हो रही थी । पण्डे लोग अपने यजमानोंके पापनिवारणार्थ उन्हें विधिपूर्वक गोमतीमें स्नान करा रहे थे । भगवान्के दर्शन-पूजनके लिये लोग मन्दिरमें टूटे पड़ते थे । सर्वत्र 'गोमती मैयाकी जय' और 'भगवान् द्वारिकाधीशकी जय' की ध्वनिसे आकाश गूँज रहा था । इसी समय भक्तवत्सल भगवान् भूधर भक्तका कार्य करनेके लिये सेठके रूपमें प्रकट हो गये । उनके साथ मुनीमरूपमें अक्रूरजी अपने साथ बही-खाता और कलम-

दावात लिये हुए थे। उन्होंने मन्दिरके पास ही एक छोटे-से चबूतरेपर अपना आसन जमा दिया।

इधर चारों यात्री गोमती-स्नान करके भगवान्के मन्दिरमें आये। वे भगवान्के दर्शन कर मन्दिरसे निकले और जूनागढ़ चलनेका विचार करने लगे। मन्दिरसे चलते ही रास्तेमें उनकी दृष्टि इस नयी गद्दीपर पड़ी। उन्होंने सोचा, चलते-चलते जरा यहाँ भी पूछ लें। उनमेंसे एकने प्रश्न किया—'सेठजी! आपका शुभ नाम क्या है?'

'मेरा नाम है शामलशाह वसुदेव।' सेठस्वरूप भगवान्ने उत्तर दिया।

यह सुनते ही यात्रियोंके सूखे हृदयपर आशाकी अमृतवर्षा हो गयी। अनायास सेठजीके मिल जानेसे उन्हे अपार आनन्द हुआ। उन्होंने तुरंत सेठजीके हाथमें हुंडी दे दी। सेठजीने हुंडी देखकर उसे मुनीमके हाथमें दे दी और सात सौ रुपये चुका देनेकी आज्ञा भी दे दी। मुनीम अक्रूरजीने पूरे सात सौ रुपये गिनकर यात्रियोंके सम्मुख रख दिये।

यात्रियोंने रुपये गिनकर ले लिये और हुंडीपर भरपाई कर दी। रुपये प्राप्त कर यात्रियोंने नरसिंहरामकी बड़ी प्रशंसा की और उनका सारा हाल सेठरूपधारी भगवान्को सुनाया। भगवान्ने भी भक्तकी प्रशंसा करते हुए कहा—'नरसिंहरामजी मेरे परमस्नेही हैं; मैं तो उनका एक आज्ञाकारी हूँ।'

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने भक्तप्रवर नरसिंहरामकी हुंडी सिकार कर भक्तकी प्रतिष्ठाकी रक्षा की और अपनी भक्तवत्सलताके यशको अक्षुण्ण रक्खा।



कुँवरबाईका संसार-चित्र

भारतीय जीवनकी एक विशेष बात है संयुक्त परिवारकी प्रथा। इस प्रथाने किसी समय हमारे गार्हस्थ्यजीवनको महान्, उज्ज्वल और सुख-शान्तिमय बनानेमें बड़ी सहायता की थी और आज भी अनेक स्थलोंमें इसके गुण देखे जाते हैं। परन्तु हमारी अज्ञानतावश इस सुन्दर प्रथाका भी एक दुष्परिणाम हमारे घरोंमें देखा जाता है, और वह है गृहकलह। आज अधिकांश परिवार इस गृहकलहके शिकार हो रहे हैं। इसके कारण हजारों कोमल, अविकसित कलियाँ, अनेक कुल-ललनाएँ अकाल ही कालके गालमें समा जाती है और कितने ही सम्पन्न परिवार सदाके लिये दुःख-सागरमें डूब जाते हैं। यद्यपि यह कलह अत्यन्त साधारण-सी

बातोंपर ही होता है, परन्तु यह अहर्निश सारे परिवारको आगकी तरह तपाता रहता है और किसी भी गृहपतिके लिये उसे बुझाना असम्भव हो जाता है। यहाँतक कि जो न्यायाधीश कचहरीमें बैठकर दुनियाके बड़े-बड़े और अत्यन्त जटिल मामलोंको तै किया करते है, वे भी अपने घरके मुकद्दमेका फैसला करनेमें असमर्थ-से हो जाते है। जो उपाधिप्राप्त डाक्टर भीषण-से-भीषण, प्राणघातक रोगोंकी चिकित्सा बड़ी सफलताके साथ किया करते हैं, वे भी इस गृहरोगको दूर करनेमें असफल रहते हैं। इस भारतीय गृहकलहकी भयङ्करताका इससे अधिक और क्या वर्णन किया जाय? भगवान् इस महामारीसे भारतकी रक्षा करें।

भक्तराज नरसिंहरामकी प्रिय पुत्री कुँवरबाईका विवाह एक सुसम्पन्न शिक्षित परिवारमें हुआ था और वह जबसे ससुराल गयी थी तबसे बराबर ही कुलोचित धर्मका पालन पूर्णरूपसे करनेकी चेष्टा करती थी; वह कभी किसी कामसे जी नहीं चुराती थी और सदा सबके साथ आदर और प्रेमका बर्ताव करती थी। फिर भी घरमें उस बेचारीका मान नहीं था। घरमें निरन्तर कलह रहता था। सास, जेठानी और ननद सभी उसपर वाग्बाण बरसाया करते थे। एक तो वह गरीब घरकी लड़की थी, दूसरे उसका पति वसन्तराय दुर्व्यसनी, लम्पट और क्रोधी था। इस कारण उसकी शिकायत भी कोई नहीं सुनता था। वह बेचारी भीतर-ही-भीतर अपनी व्यथासे नित्य घुला करती थी।

इसके अतिरिक्त एक तीसरा कारण और उपस्थित हो गया। ईधर उसकी शादी हुए कई वर्ष बीत गये, परन्तु उसे कोई सन्तान

नहीं हुई। समाजमें पुत्रहीना कुलवधुओंको लोग अभागिनी समझते हैं और इस कारण भी उन्हें बहुत कुछ सहना पड़ता है। लोग उन्हें तरह-तरहके दुर्वचन सुनाते हैं। और उसपर दूसरा विवाह कर लेनेकी धमकी भी देते हैं। कुँवरबाई और दुःखोंको तो सह ही रही थी, यह दुःख उसके लिये असहनीय हो गया। क्योंकि इसमें उसका दोष ही क्या था अथवा इसके लिये स्वयं वह कर ही क्या सकती थी? कुँवरबाईके ससुर श्रीरंगधर मेहता राज्यके एक उच्च पदपर थे। वह स्वयं एक विचारशील तथा दयालु स्वभावके पुरुष थे। वह पुत्रवधूके कष्टोंसे बिल्कुल अपरिचित नहीं थे; फिर भी वह इस मामलेमें कुछ करनेमें असमर्थ थे। अतएव वह बेचारी एक मूक पशुकी भाँति सब सुनती-सहती थी और एकमात्र भगवान्‌से अपने दुःख सुनाकर सन्तोष कर लेती थी।

कहते हैं, जब मनुष्य सब ओरसे आशाएँ छोड़कर केवल एक भगवान्‌को दीनभावसे पुकारता है, तब उसकी पुकार भगवान्‌के कानोंमें अवश्य पहुँचती है और फिर भगवान्‌को उस प्राणीका कष्ट दूर किये बिना चैन नहीं मिलती। आखिर असहाया कुँवरबाईकी भी मूक आवाज भगवान्‌तक पहुँच ही गयी और भगवान्‌ने उसपर कृपा की। वह गर्भवती हुई और धीरे-धीरे उसका गर्भ सात-आठ मासका हो गया।

गुजरात-काठियावाड़में पुत्रवधूका सीमन्त-प्रसंग बड़े धूम-धामके साथ मनाया जाता है। और दो दिनतक जातिभोज दिया जाता है। जिस स्त्रीका सीमन्त होता है उसका पिता पुत्री तथा

टोपीमें है तीन गुन, नहिं मुनीम नहिं सेठ।
बाबा बाबा सब करें, और भरे खुशीसे पेट॥

फिर उसको और चाहिये भी क्या ? बस, दिनभर शालिग्राम पत्थरसे माथाकूट.......।'

वह इसी धुनमें न मालूम और क्या-क्या कह डालती; किन्तु इसी बीच श्रीरंगधर मेहता घरमें आ गये और मामला शान्त हो गया। उन्होंने पत्नीकी आवाज तथा बहूकी रुलाई सुनकर किञ्चित् क्रोधावेशमें पूछा—'क्या बात है ? आज बहू रो क्यों रही है ? तुम दोनों माँ-बेटी क्यों इस गरीब लड़कीके पीछे बराबर लगी रहती हो ?'

'बात कुछ नहीं है। बहू कहती है कि मेरे पिताजीके पास कुंकुमपत्रिका भेजिये और मैं कहती हूँ कि कोई जरूरत नहीं।' श्रीरंगधरकी पत्नीने उत्तर दिया।

'इसमें कौन बात है ? मैंने तो इसलिये पत्रिका नहीं भेजी कि इससे भक्तराजके भजनमें व्यर्थ बाधा पहुँचेगी और कुछ व्ययका भार आ जानेसे उन्हें कष्ट भी होगा। यदि बहूकी ऐसी ही इच्छा है तो मैं आज ही ब्राह्मणके हाथ कुंकुमपत्रिका भेज देता हूँ।' श्रीरंगधर मेहताने शुद्ध हृदयसे आश्वासन देते हुए कहा।

अपने वचनके अनुसार श्रीरंगधर मेहताने तुरंत एक ब्राह्मणको बुलाया और आमन्त्रणपत्र उसे देकर जूनागढ़ भेज दिया। कुँवरबाई-को इस बातसे सन्तोष हुआ और वह प्रसन्नतापूर्वक अपने गृह-कार्यमें लग गयी।



भक्तसुताका सीमन्त

संसारमें रहकर भगवान्‌की भक्ति करना दोधारी तलवारके साथ खेलनेके समान है। ऐसे भक्तोंके सामने एक ओर सांसारिक बाधाएँ दीवालकी तरह खड़ी हो जाती हैं और दूसरी ओर शुद्ध-सात्त्विक जीवनकी सुनहली झलक उन्हें अपनी ओर खींचती है। फिर भी भक्त भगवान्‌की कृपासे अपने सांसारिक और पारमार्थिक दोनों कार्योंको शास्त्रोंकी आज्ञाके अनुसार ठीक-ठीक सम्पन्न करते हैं।

मध्याह्नका समय हो चुका था। भगवान्‌का पूजन करके नरसिंहराम भोजनकी तैयारी कर रहे थे। ठीक इसी समय श्रीरंगधर मेहताके भेजे हुए ब्राह्मणने आकर उनके हाथमें कुंकुम-पत्रिका दी। पत्रिका खोलकर वह बाँचने लगे—

परमस्नेही भक्तराज श्रीनरसिंहरामजी !

सप्रेम भगवत्स्मरण ।

आपकी पुत्री कुँवरबाईका सीमन्त-मुहूर्त्त माघ शुक्ला सप्तमी रविवारको निश्चित हुआ है। अतः आपसे निवेदन है कि आप इस शुभ अवसरपर अपने इष्ट-मित्रोंके साथ पधारकर मेरे आँगनकी शोभा बढ़ानेकी कृपा करें। यहाँ सब तरहसे कुशल है। आशा है, आप भी कुशलपूर्वक होंगे।

आपका—

श्रीरंगधर राय

मेहताजीने ब्राह्मणका यथोचित सत्कार किया और दूसरे दिन विदा कर दिया।

भक्तराजने अपने मनमें विचार किया—आजतकके व्यावहारिक कार्योंमें और मेरे जीवनमें भी यह अन्तिम प्रसङ्ग है। अतः यथाशक्ति देकर पुत्रीको सन्तुष्ट करना चाहिये। किन्तु…। इसके लिये मुझे क्या ? मैं व्यर्थ क्यों चिन्ता करूँ ? वही भक्तवत्सल भगवान् मेरे इस अन्तिम प्रसंगको भी सिद्ध करेंगे।

भक्तराजने किसी सेवककी टूटी बैलगाड़ी और बूढ़े बैलोंको जोतकर जूनागढ़से प्रस्थान किया। उनके साथ दो-चार साधुओंका समुदाय था और सामानमें केवल भगवान्‌की प्रतिमा, करताल तथा गोपीचन्दनादि पूजाकी सामग्री थी। प्रायः आठ-दस दिनमें भजन-कीर्तन करते हुए वह ऊना पहुँच गये।

श्रीरंगधर मेहताके घर खूब धूमधामके साथ उत्सवकी तैयारी

हो रही थी. । भक्तराजके आनेका समाचार सुनकर वह उनसे मिलनेके लिये आये । उन्होंने कुशल-समाचार पूछकर एक पुराने मकानमें उनके ठहरनेका प्रवन्ध कर दिया । सभ्यसमाज तो भक्तिको एक खेलवाड़ समझता है । भला ऐसे व्यर्थ तमाशा करने-वालेको किसी सुन्दर स्थानमें उतारनेसे क्या लाभ ?

परन्तु हमारे भक्तराजके लिये तो पर्णकुटी और राजभवन एक समान थे । उन्होंने भगवान्की प्रतिमाको एक किनारे स्थापित कर दिया और स्नानादि करके नियमानुसार श्रीकृष्णकीर्तनमें प्रवृत्त हो गये ।

पिताके आनेकी खवर सुनकर कुँवरवाईको वड़ी प्रसन्नता हुई । वह उनसे मिलनेके लिये उस स्थानपर आयी । परन्तु वहाँ-का ढंग देखकर उसे वड़ी निराशा हुई और उसकी आँखोंसे अश्रुधारा वहने लगी ।

'वेटी ! क्यों रो रही है ?' भजन पूरा करके भक्तराजने पूछा ।

'पिताजी ! सारी नागर-जाति मेरा मज़ाक उड़ा रही है । यदि आप इस साधु-मण्डलीको साथ न लाकर अपने कुछ भाई-वन्धुओंको साथ ले आते तो इन लोगोंको बुरा न मालूम होता ।' कुँवरवाईने उत्तर दिया ।

'पुत्री ! तुम उन लोगोंकी वातपर क्यों ध्यान देती हो ? तुम नहीं जानती कि गङ्गा पापका, शशि तापका और कल्पतरु दरिद्रता-का नाश करता है, परन्तु महाजन संतलोग पाप, ताप और

दरिद्रता—तीनोंका नाश करते हैं । फिर इनसे बढ़कर अपने आत्मीय और सम्बन्धी कौन हैं ? सांसारिक भाई-बन्धु तो बस स्वार्थपर निर्भर करते हैं । अगर स्वार्थ सिद्ध न हो तो माता-पिता, भाई-बहन, सगे-सम्बन्धी जितने हैं, सभी बिराने हो जाते हैं । अतएव मैं ऐसी कल्याणकारिणी साधुमण्डलीको छोड़कर स्वार्थी सम्बन्धियोंका सङ्ग जान-बूझकर कैसे करूँ ?' नरसिंहरामने कहा ।

'अच्छा, पिताजी ! सङ्गकी बात जाने दीजिये । बतलाइये, मेरी सास, ननद और अन्य कुटुम्बियोंके लिये आप चीर किस प्रकारके लाये है ?' कुँवरबाईने उत्सुकतापूर्वक पूछा ।

'पुत्री ! तुम तो जानती ही हो कि तुम्हारा यह कंगाल पिता कुछ भी करनेकी शक्ति नहीं रखता, जो कुछ करना होगा, वही दीनदयालु करेंगे ।' भक्तराजने निश्चिन्ततापूर्वक उत्तर दिया ।

'पिताजी ! कल ही तो सीमन्तका मुहूर्त्त है और आप साथमें कुछ भी लाये नहीं, फिर भगवान् किस प्रकार पहुँचा जायँगे ? वह कहाँ रहते हैं, यह भी तो निश्चित नहीं !' अधीर होकर कुँवरबाईने कहा ।

'बेटी ! तुम यह क्या कह रही हो ? तुम इतना घबड़ा क्यों रही हो ? तुमने तो उन प्रभुकी दीनदयालुता प्रत्यक्ष देखी है । तुम्हारे भाई शामलदासके विवाह-कार्यमें उन्होंने कितना परिश्रम किया था ? तुम्हारी विदाई स्वयं भगवान्‌ने ही तो की थी । फिर तुम्हारे हृदयमें ऐसी शंका क्यों उत्पन्न हुई ? उनका निवास तो जड-चेतन, आकाश-पाताल और पृथ्वीमें सर्वत्र है । अतः

तुम निश्चिन्त होकर अपने घर जाओ; भगवान् सब कुछ अच्छा ही करेंगे।' भक्तराजने कुँवरबाईका समाधान करते हुए कहा।

कुँवरबाई कुछ आश्वस्त होकर अपने घर वापस चली गयी और गृहकार्यमें प्रवृत्त हो गयी। इधर नरसिंह मेहता भगवान्को नैवेद्य प्रदान करके साधु-मण्डलीके साथ श्रीरंगधर मेहताके घरपर आये। वहाँ जातिभरके लोग एकत्र हुए थे और भोजनकी तैयारी हो रही थी। लोग स्नान कर-करके भोजनके लिये बैठ रहे थे। नरसिंहराम भी स्नान करने बैठे; परन्तु जल इतना अधिक गरम था कि उसे स्पर्श करना भी कठिन था। उन्हें क्या पता कि परीक्षाके लिये जान-बूझकर इतना गरम जल दिया गया है। उन्होंने सरलतापूर्वक थोड़ा-सा ठंडा जल माँगा।

इसपर कुँवरबाईकी सासने परिहास करते हुए कहा—'आप तो भगवान्के प्यारे भक्त हैं; आकाशसे वृष्टि कराकर भगवान्से ठंडा जल ले लीजिये।'

वहाँपर जितने नागर उपस्थित थे, सबने व्यङ्गमें एक स्वरसे कहा, 'हाँ, हाँ, ठीक तो है, भक्तराजजीके लिये यह कौन बड़ी बात है।' भक्त बड़े पशोपेशमें पड़े। सोचा, 'सब लोग भोजनके लिये तैयार बैठे हैं, जबतक वृष्टि नहीं होगी तबतक सब लोग बिना भोजनके ही रहेंगे और इधर ये लोग जल भी नहीं देना चाहते। खैर, भगवान्की जैसी इच्छा।'

इतना सोचकर उन्होंने अपनी करताल मँगायी और मल्हार

यह सुनकर सभी स्त्रियाँ हँस पड़ीं। कुँवरबाई लज्जा और अपमानके मारे सिकुड़ गयी, सोचने लगी, धरती फटे तो उसमें समा जाऊँ। परन्तु बेचारी मौन रहनेके सिवा और इस समय कर ही क्या सकती थी? एक धर्मपरायणा अनुभवी वृद्धा स्त्रीने सबको मना करते हुए कहा—'भगवान्‌के ऐसे ऐकान्तिक भक्तकी हँसी नहीं उड़ानी चाहिये। मालूम नहीं, वे क्या लीला कर डालें। भगवान्‌की सच्ची भक्तिके बलपर क्या नहीं हो सकता? क्या तुमलोगोंने द्रौपदीके चीर बढ़नेकी बात नहीं सुनी है?'

जगत्‌में समालोचकोंकी कोई कमी नहीं। प्रत्येक मनुष्य चाहे उसे कुछ जानकारी हो या न हो, अपनी बुद्धिके अनुसार दूसरेकी समालोचना करता ही रहता है। समालोचनाकी इतनी प्रबल बाढ़ चला करती है कि यदि साधक अस्थिर चित्तवाला हो तो उसे पथभ्रष्ट होते भी देर नहीं लगती। भक्तराज नरसिंह-राम तो ऐसी सांसारिक बाधाओंसे एकदम परे थे, उन्हें इतनी कहाँ फुरसत थी कि वह दूसरोंकी समालोचना सुनते? वह तो तन्मय होकर बस भगवान्‌का आवाहन कर रहे थे। आखिर उनकी एकमुखी दीन पुकार सात लोकोंको भेदकर दिव्य भगवद्-धाममें पहुँच ही गयी और भक्तवत्सल भगवान् तत्काल भक्तका कार्य करनेके लिये तीव्र गतिसे चल पड़े।

भक्तराजका कीर्तन समाप्त होते ही मंगल गीत गाती हुई अनेकों दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित दिव्य तेजोमयी सुन्दरियोंके साथ एक सेठके रूपमें स्वयं भगवान्‌ने संस्कार-मण्डपमें प्रवेश

किया । इस रहस्यको दूसरा कोई नहीं जान सका ! जानता भी कैसे ? इन चर्मचक्षुओंके द्वारा योगमायासमावृत भगवान्‌के दिव्य विग्रहके दिव्य दर्शन दूसरोंको कैसे हो सकते थे ? भक्तराज भगवान्‌को पहचानकर उनके चरणोंपर लोट गये ।

सेठरूपधारी भगवान्‌ने अपना परिचय देते हुए श्रीरंगधर मेहतासे कहा—'श्रीरंगधरजी ! नरसिंहजी मेरे अभिन्न सखा हैं । मै द्वारिकामें रहकर इनके साझेमें व्यापार करता हूँ । मेरी सारी सम्पत्ति इन्हींकी कृपाका फल है ।'

इतना कहकर सेठजीने अपने ही हाथों समस्त सम्वन्धियों-को अमूल्य वस्त्राभूपण प्रदान किये । जाति-प्रथासे वहुत अधिक ढेर-के-ढेर चीर प्रदान करके उन्होंने सवको सन्तुष्ट किया । सभी उपस्थित लोगोंने विस्मयके साथ इस लीलाको देखा और सवने भक्तराजकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ।

भक्तराजने गद्गद कण्ठसे भगवान्‌का हार्दिक स्वागत किया । श्रीरंगधरके आग्रह करनेपर भगवान्‌ने उस दिन उनका आतिथ्य स्वीकार किया और दूसरे दिन वहाँसे विदा होकर अन्तर्हित हो गये । साधु-मण्डलीके साथ भक्तराज भी जूनागढ़ लौट आये ।



तिलक किये और गलेमें तुलसीकी माला पहने चञ्चलाने भक्तराजके घरमें प्रवेश किया। उस समय वह एक भक्तिमती साध्वीकी तरह शोभा दे रही थी। उपस्थित संतोंको 'जय श्रीकृष्ण' करके वह एक ओर बैठ गयी और बड़े भावके साथ सबके सङ्ग मिलकर हरिकीर्तन करने लगी। सभी साधु, यहाँतक कि स्वयं भक्तराज भी मन्त्रमुग्धकी तरह उसकी तन्मयता देखने लगे।

भजन समाप्त होनेपर भक्तराजने चञ्चलासे प्रश्न किया—'बहन! आपका शुभ निवास कहाँ है?'

'मेरा निवास प्रभास-क्षेत्रमें है; मैं द्वारिकाजी जा रही हूँ। आपका नाम सुनकर एक कार्यके लिये मैं आपके पास आयी हूँ।' चञ्चलाने अपना मिथ्या परिचय दिया।

'ऐसा कौन-सा कार्य है जिसके लिये आपको मेरे पास आनेकी जरूरत पड़ी?' भक्तराजने विस्मयके साथ प्रश्न किया।

'मैं एक दान लेनेकी इच्छासे यहाँ आयी हूँ।' चञ्चलाने उत्तर दिया।

'साध्वी! यदि तुम्हें किसी तरहका दान लेनेकी इच्छा है तो तुम किसी श्रीमन्तके घरपर जाओ। मेरे पास तो इस करताल, मृदंग और गोपीचन्दनके अतिरिक्त और कोई भी वस्तु नहीं है।' भक्तराजने सरलतापूर्वक कहा।

'भक्तराज! जो वस्तु मैं आपसे लेना चाहती हूँ, उसे मैं और किसीसे लेना नहीं चाहती। यदि आप मेरे ऊपर कृपा करें तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँगी।' चञ्चलाने विनय दिखाते हुए कहा।

'अच्छा बोलो, तुम्हें किस वस्तुकी चाह है? यदि भगवान्‌की इच्छा हुई तो मिल ही जायगी।' भक्तराजने उदासीनतापूर्वक कहा।

'आपकी आज्ञा हो गयी, बस, इस समय इतना ही पर्याप्त है। पीछे समय आनेपर मैं आपसे माँग लूँगी।' चञ्चलाने कहा।

विकारी मनुष्योंकी दृष्टिमें सभी मनुष्य अपने-जैसे विकारी ही दिखायी देते हैं। वे शुद्ध मनुष्यको भी विकारी ही मान बैठते हैं। शुद्ध मनुष्यके ज्ञानयुक्त शब्द भी उनको विकारके सूचक मालूम होते हैं और वे उनका उलटा अर्थ लगाकर अपना अभीष्ट सिद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं। चञ्चलाने भी भक्तराजके शब्दोंका उलटा ही अर्थ लगाया। उसने समझा, भक्तराजने मेरे रूपपर मोहित होकर ही मेरी याचना स्वीकार की है।

भजन समाप्त होनेपर सब लोग अपने-अपने आसनपर जाकर सो गये। चञ्चलाको भी भक्तराजने एक उपयुक्त स्थान सोनेके लिये दिखा दिया। अन्तमें वह भी मन्दिरके दरवाजेपर अपना आसन लगाकर सो गये। धीरे-धीरे सब लोग गहरी निद्रामें डूब गये। परन्तु चञ्चलापर निद्रादेवीने कृपा नहीं की वह तो अपने स्वार्थ-साधनकी चिन्तामें उपयुक्त समयकी प्रतीक्षा कर रही थी।

आधी रात बीत जानेपर जब चञ्चलाको विश्वास हो गया कि अब कोई जगा नहीं होगा तब उसने अपने सादे कपड़े उतारकर सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये। उस समय उसकी मुखाकृति, शरीरकी गठन और श्रृङ्गार देखनेसे वह कोई देवाङ्गना-सी प्रतीत हो रही थी।

वह अपने आसनसे उठी और मन्दगतिसे भक्तराजके आसनके पास आयी। उसके चरणोंकी नूपुर-ध्वनि सुनकर भक्तराज जग उठे।

'कौन है, इस समय ?' भक्तराजने प्रश्न किया।

'मैं वही हूँ जो आपके साथ भजन कर रही थी।' चञ्चलाने उत्तर दिया।

'फिर इस समय तुम यहाँ क्यों आयी ?' भक्तराजने पुनः प्रश्न किया।

'नरसिंहरामजी ! मैं आज आपके पास ऋतुदान लेने आयी हूँ, जिसके लिये आपसे शामको मैंने प्रार्थना की थी। मैं अन्य किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करती। आप..........' चञ्चलाने कहा।

चञ्चलाकी इस निर्लज्जताको देखकर नरसिंहराम अवाक् हो गये। उनके मुँहसे केवल 'हरि, हरि' शब्द निकल पड़ा।

चञ्चलाने पुनः अधीर होकर कहा—'भक्तराज ! आप अब मुझे अधिक न सताइये; शीघ्र मेरी मनःकामना पूरी करके मुझे सन्तुष्ट कीजिये।'

'साध्वी ! तुम यह क्या कह रही हो ? क्या मेरे पास तुम यही दान लेनेके लिये आयी हो ? साधुका स्वाँग धारणकर ऐसा नीच विचार मनमें भी रखनेसे मनुष्य पापका भागी बनता है और अन्तमें अधःपतनके गहरे गर्तमें गिरता है। मनुष्य-जीवन पाप करनेके लिये नहीं, अक्षय पुण्यका उपार्जन करनेके लिये है; व्यभिचारके लिये नहीं, संयमके लिये है; वासनाकी तृप्तिके लिये

नहीं, शुद्ध सात्त्विक प्रेम प्राप्त करनेके लिये है; चरित्रका सर्वनाश करनेके लिये नहीं, सच्चरित्रताका संग्रह करनेके लिये है; अविद्याकी उपासना करना मनुष्यजीवनका लक्ष्य नहीं है, बल्कि अविद्याका नाशकर सद्विद्याका सेवन करना है। कहा है—

लब्ध्वा कथञ्चिन्नरजन्म दुर्लभं
तत्रापि पुंस्त्वं श्रुतिपारदर्शनम्।
यस्त्वात्ममुक्त्यै न यतेत मूढधीः
स आत्महा स्वं विनिहन्त्यसद्ग्रहात्॥

अर्थात् पूर्वोपार्जित पुण्यके प्रभावसे यह दुर्लभ मनुष्यदेह तथा वेदज्ञानसम्पन्न पुरुषत्व प्राप्त होनेपर भी जो मूढ़बुद्धि मनुष्य मोक्षके लिये प्रयत्न नहीं करता, वह आत्मघाती मनुष्य असत्—संसारको ग्रहण करके स्वयं अपना नाश करता है।

साध्वी! विषयोंकी तृष्णा, संसारके अन्य पदार्थोंकी तृष्णा तथा मान-कीर्ति आदिकी तृष्णा मनुष्यको बलात् नरककी ओर ले जाती है। फिर यदि एक बार इन तृष्णाओंकी पूर्ति भी कर दी जाय तो मनुष्यको उनसे शाश्वत सुख कदापि नहीं मिल सकता। बल्कि इन तृष्णाओंको प्रोत्साहन देनेसे ये और भी बढ़ती हैं। उम्र बीत जाती है, शरीर बूढ़ा हो जाता है, परन्तु तृष्णा बूढ़ी नहीं होती। यह कामनाकी आग विषयरूपी ईंधनसे बुझती नहीं, ज्यादा धधकती है और मनुष्यकी समस्त सुखशान्तिको भस्म करके फिरसे जन्म-मरणके भयानक चक्करमें डाल देती है। अतएव इस तृष्णाका नाश करना ही मोक्षका प्रधान साधन है; भोगोंकी प्राप्तिसे तृष्णाका शमन नहीं होता। क्योंकि—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

(मनुस्मृति २। ९४)

घृतकी आहुतिसे अग्नि विशेष प्रज्वलित होती है, इसी प्रकार इच्छाओंकी तृप्ति करनेसे वे भयंकर रूप धारण करके मनुष्यका सत्यानाश करनेमें सहायता करती हैं।

संसार भी एक प्रकारका महारोग है; उसको दूर करनेके लिये भगवन्नामस्वरूप दिव्य ओषधि बड़ा ही उपकार करनेवाली है। परन्तु उस ओषधिसेवनके साथ-साथ विषयादिरूप कुपथ्यका सेवन करते रहनेसे नये-नये रोगके अङ्कुर उत्पन्न होते रहते हैं और इसलिये महारोगका नष्ट होना कष्टसाध्य हो जाता है। इतना ही नहीं, विषयासक्तिके बढ़ जानेसे भगवन्नाम छूट जाता है और यह महारोग सन्निपातका भीषण स्वरूप धारण कर लेता है।

यह जीव अनेक जन्मोंसे संसारके इन्द्रियजनित विषयसुखका अनुभव करता आ रहा है, परन्तु फिर भी उसको तनिक भी सन्तोषका अनुभव नहीं हुआ है। अतः शास्त्रकारोंने तथा अनुभवी महात्माओने यह निश्चय किया है कि यह संसार अनित्य और सुखहीन ही है। भगवान्‌ने कहा है—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥

(गीता ९। ३३)

इस अनित्य और सुखहीन संसारको पाकर मुझको भजो। अतएव केवल आत्मचिन्तन और भजनका दिव्यानन्द ही सच्चा सुख

है। विषयोंका आनन्द तो मूर्खतासे ही प्रतीत होता है।' भक्तराजने कहा।

भक्तराजके इस विस्तृत विवेचनने चञ्चलाके हृदयको एकदम पलट दिया। उसके जन्म-जन्मान्तरके कुसंस्कारोंपर मानो जादूका-सा असर हो गया और वे उसके हृदय-पटलपरसे अपने-आप खिसकने लगे। विषयगन्धसे अपवित्र बना हुआ उसका तमोमय स्वरूप सत्सङ्गरूपी शारदी पूर्णिमाके संसर्गसे निर्मल चन्द्रमाकी भाँति विकसित होने लगा। उसके सौन्दर्यमें सात्त्विक शान्तिका सम्मिश्रण हो गया!

'क्षमा कीजिये भक्तराज! आज आपने मुझे प्रगाढ़ अन्धकारमेंसे निकालकर परम प्रकाशमें पहुँचा दिया। आजसे आप ही मेरे सच्चे सद्‌गुरु हैं। आपके सदुपदेशने मेरे विकारोंको निर्मूल कर दिया। परन्तु·······मैने आजतक पाप कमानेमें कोई कसर नहीं रक्खी है। मेरे दुःसङ्गसे अनेक सुशील युवक पथभ्रष्ट होकर नष्ट-भ्रष्ट हो चुके हैं। आज अपने कुकृत्योंका स्मरण कर मेरा कलेजा काँप उठता है। उन्हें देखते हुए तो ऐसा मालूम होता है कि मुझे रौरव नरकमें भी स्थान मिलना कठिन है। आप मेरे कल्याणमार्गके निर्देशक बनकर मुझे उचित शिक्षा दीजिये।' गद्गद कण्ठसे यों कहती हुई चञ्चला भक्तराजके चरणोंमें गिर पड़ी।

पुत्री! अनेक प्रकारके पाप करनेपर भी यदि मनुष्य सच्चे हृदयसे पश्चात्ताप करे तो वह उन पापोंसे मुक्त हो जाता है। फिर भगवान्‌का अनन्य चिन्तन तो पतित मनुष्योंको भी पावन बनानेके लिये प्रसिद्ध ही है। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

भक्तराज दरबारमें

दूसरे दिन रावमाण्डलीकके दरबारमें भक्तराज हाजिर हुए। सारंगधर, वंशीधर, अनन्तराय इत्यादि अपने ही कुटुम्बीजन नरसिंहरामका अपमान करनेके लिये इस तरह उतारू होकर दरबारमें बैठे थे, जिस तरह काठको काटनेके लिये काठका ही टुकड़ा कुल्हाड़ीका बेंट बना हुआ रहता है। भक्तराजको ज्ञानहीन ठहरानेके लिये सारंगधर अपने साथ शहरके दो-चार संन्यासियोंको रुपयोंका लालच देकर ले आया था। जब सब लोग आकर यथास्थान बैठ गये तब राजाने सारंगधरकी मंडलीकी ओर देखते हुए कहा—'कहिये, आपलोगोंका क्या कहना है?'

'राजन्! यह नरसिंहराम इस शहरमें रहकर अनेक प्रकारके ढोंग रचकर जनताको भ्रममें डाल रहा है; भक्तिका झूठा बहाना बनाकर अनेक प्रकारके अनाचारोंका पोषण कर रहा है

और स्वयं अज्ञानी होनेपर भी अन्य मनुष्योंको ज्ञान देनेका निन्दित एवं धर्मशास्त्रविरुद्ध कार्य कर रहा है। अतः राजाका धर्म है कि ऐसे अधर्मकी वृद्धि करनेवाले मनुष्यको उचित दण्ड देकर अधर्मसे देशकी रक्षा करे।' सारंगधरने अपनी शिकायत पेश की।

'सारंगधरजी! मैं बहुत दिनोंसे भक्तराजकी कीर्ति सुन रहा हूँ। वह भगवान् कृष्णके प्यारे भक्त हैं। जन्मसे लेकर आज-पर्यन्त उनके ऊपर किसी प्रकारका कलंक आया हो, ऐसा सुना नहीं है। फिर आज वृद्धावस्थामें उनके अंदर कोई कुप्रवृत्ति पैदा हो, जैसा कि आप कहते हैं, असम्भव है। ऐसे वीतराग महात्मा भगवद्भक्तिके द्वारा संसारको सच्चे मार्गपर ला देते हैं; उनका आचरण ही धर्मशास्त्र बन जाता है। आखिर आपका धर्मशास्त्र क्या है? ऐसे ही महानुभावोंका अनुभव, उपदेश और जीवनप्रणाली ही तो है। अतः इनका आचरण कभी धर्मशास्त्रविरुद्ध नहीं हो सकता। अब रही उनके अनाचारकी बात। सो इस विषयमें भी जबतक कोई विश्वसनीय गवाही नहीं मिल जाती तबतक उनको दुराचारी कहना पाप है।' राजाने कहा।

इसी समय अनन्तरायने बोलना शुरू किया—'राजन्! आपने जो कुछ व्याख्या सुनायी वह अनन्य भक्तोंके लिये बिल्कुल यथार्थ है। यह नरसिंहराम तो मेरा भानजा ही है; परन्तु यह कहते हुए मुझे तनिक भी संकोच नहीं होता कि यह वास्तवमें भजनके बहाने अनाचार ही बढ़ाता है। इस विषयमें मेरा एक प्रत्यक्ष अनुभव है, सो मैं निवेदन करता हूँ।

मेरी स्त्री भी नित्य इसके भजनमें शामिल होती थी। वह नित्य आधी रातको भजनके बीचमें इसे जल पिलाया करती थी। इस बातको सारंगधरजीने मुझसे कईबार कहा, परन्तु मैं इसे नहीं मानता था। एक दिन जब मैंने स्वयं उसे पानी पिलाते देखा तो दूसरे दिन उसे भजनमें जानेसे मना कर दिया। परन्तु उसने मेरी बात नहीं मानी और उस दिन भी चली गयी। फिर रंज होकर दूसरे दिन मैंने उसे बाँधकर कमरेमें बंद कर दिया और ताला लगाकर चाभी अपने पास रख ली। मैंने सुना था कि भजनके बीचमें यह दूसरेके हाथका जल नहीं पीता। इसलिये कौतूहलवश मै उस रातको इसके घर यह देखने गया कि आज इसकी टेक कैसे रहती है। परन्तु भजनके बीचमें विश्रामके समय देखा कि वही मेरी स्त्री इसको अपने हाथसे पानी पिला रही है।* यह दृश्य देखते ही मुझे बड़ा क्रोध हुआ कि उसे किसने निकाल दिया। मै उसी क्षण घर गया। परन्तु वहाँ जाकर देखता हूँ कि ताला भी बंद है और वह उसी तरह बंदी अवस्थामें राधाकृष्णके नामकी धुन लगाती हुई पड़ी है तब तो बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछ समझमें ही नहीं आया कि मामला क्या है। अन्तमें मैं इस निश्चयपर आया कि इसी प्रकार नरसिंहराम जादूके बलपर अनेक स्त्रियोंको अपनी ओर आकर्षित

---

* कहते हैं, अनन्तरायकी स्त्रीके बंदी होनेपर उस दिन स्वयं भगवान्‌ने उसका रूप धारण करके भक्तराजको जल पिलाया था। इसका रहस्य न समझनेके कारण सारंगधर और अनन्तरायने भक्तराजको अनाचारी मान लिया था।

करता है और फिर उनके साथ स्वेच्छा विहार करता है। यदि आपको विश्वास न हो तो आप स्वयं शहरमें चलकर चञ्चला वेश्याको देख आइये। उसने भी इसीके फंदेमें फँसकर विचित्र वेष धारण कर लिया है और नित्य वह भी इसके यहाँ जाया करती है। यह बात शहरके तमाम लोग जानते हैं। राजन्! क्या कोई मनुष्य रात्रिके समय एकान्तमें किसी वेश्याके साथ रहकर पवित्र रह सकता है? भला काजरकी कोठरीमें श्वेत वस्त्र पहनकर रहनेवाला कभी उसके दागसे बच सकता है? आप स्वयं ही विचार करें कि हमलोगोंका अभियोग ठीक है या नहीं।'

अनन्तरायके सप्रमाण वक्तव्यको सुनकर राजा बड़े विचारमें पड़ गये। उन्होंने सोचा कि चञ्चला वेश्याकी बात तो सर्वविदित है ही कि वह भक्तराजके पास जाया करती है। फिर अनन्तराय ईश्वरकी शपथ लेकर स्वयं अपना अनुभव कह रहे हैं; अपने घरके विषयमें एक प्रतिष्ठित आदमी कभी झूठी बात नहीं कह सकता। फिर इस विषयमें निर्णय कैसे किया जाय? अच्छा, जरा नरसिंहरामसे भी पूछा जाय, देखें वह इन बातोंका क्या उत्तर देते हैं। दोनों पक्षकी बात पहले सुन लेना आवश्यक है। इस प्रकार सोचकर उन्होंने भक्तराजकी ओर देखा और कहा— 'भक्तराज! इस विषयमें आप क्या कहना चाहते हैं?'

'राजन्! अनन्तरायका कथन सब यथार्थ ही है। परन्तु किसी मनुष्यसे भजनमें आनेके लिये न तो मैं आग्रह करता हूँ और न किसीके लिये प्रतिबन्ध लगाता हूँ। मेरे घर आकर भगवद्-

भजन करनेका अधिकार आवाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सबको समान है। इस विषयमें मैं अपनेको दोषी नहीं समझता। मैं अपने राधेश्यामके नामके सिवा और कुछ भी नहीं जानता। मैं तो अपने पास आकर भजन करनेवालोंका प्रतिरोध करके उनका जी दुखाना स्वयं भगवान्‌के प्रति दोष करनेके बराबर समझता हूँ। फिर आप राजा हैं; आपमें भी परमात्माका अंश वर्तमान है; आप स्वयं विचार कर देख सकते हैं कि मै इस विषयमें दोषी हूँ या निर्दोष। यदि आपको मेरा दोष जान पड़े तो आप मुझे उचित दण्ड दे सकते हैं।' भक्तराजने सरलतापूर्वक निवेदन किया।

महात्माओंका हृदय अत्यन्त कोमल और दयालु होता है। वे स्वयं आपत्तिमें पड़ जानेपर भी अपने मुँहसे अपराधी मनुष्योंको भी अपराधी नहीं कहते। भक्तराज जानते थे कि इन लोगोंने ईर्ष्यावश ही यह सब काण्ड रचा है, तथापि उन लोगोको दोषी ठहराना भक्तराजके लिये पाप ही था।

भक्तराजका कथन सारंगधरसे नहीं सहा गया। वह तुरंत अपने आसनसे उठकर कहने लगा—'नरसिंहराम! तुम बहुत अनर्थ कर रहे हो। तुम्हें शास्त्रज्ञान तो बिल्कुल नहीं और बन बैठे हो उपदेशक। यदि तुम अपनेको उपदेश देनेका अधिकारी समझते हो तो इन संन्यासियोंके साथ शास्त्रार्थ करो और इस सभामें अपनी सर्वज्ञता सिद्ध करो।'

'भाई! न तो मैं शास्त्रज्ञ हूँ और न सर्वज्ञ। परमात्माके सिवा इस जगत्‌में कोई भी सर्वज्ञ होनेका दावा नहीं कर सकता।

अतएव मैं शास्त्रार्थ या वेदार्थ कुछ भी करनेमें असमर्थ हूँ। कहा है—

काम क्रोध मद मोहको, जब लगि घटमें स्थान।
क्या पंडित क्या मूरखा, दोनों एक समान॥

शास्त्रोंको पढ़कर वाद-विवाद तथा काम-क्रोधादिके वशीभूत होकर उन शास्त्रोंका दुरुपयोग करनेवालेको पण्डित कहनेवाला भी मूर्ख है। अतः मुझे तो पहलेसे ही पण्डित बनना नापसंद है। मैं तो केवल आत्मचिन्तन और भगवान्‌का नाम ही जानता हूँ। भगवच्चिन्तनके द्वारा जबतक आत्माकी पहचान नहीं होती, तबतक यज्ञ, तप और व्रत आदि साधन भी उपयुक्त फल नहीं देते। सुनिये—

प्रभाती

ज्यां लगी आतमा तत्त्व चिन्यो नहीं, त्यांलगी साधना सर्व झूठी।
मानुष देह तारो, एम एळे गयो, मावठांनी जेम वृष्टि वूठी॥१॥
शुं थयुं स्नान सेवा ने पूजाथकी शुं थयुं घेर रहि दान दीधे।
शुं थयुं धरि जटा भस्म लेपन कर्ये शुं थयुं लाललोचन कीधे॥२॥
शुं थयुं तप ने तीरथ कीधाथकी, शुं थयुं माळ ग्रही नाम लीधे।
शुं थयुं तिलक ने तुलसी धार्याथकी, शुं थयुं गंगजळ पान कीधे॥३॥
शुं थयुं वेद व्याकरण वाणी वदे, शुं थयुं राय ने रंक जाणे।
शुं थयुं देवदर्शन सेवायकी, शुं थयुं वरणना भेद आणे॥४॥
ए छे परपंच सहु, पेट भरवातणा, आत्म परब्रह्म जेणे न जोयो।
भणे नरसैंयो के, तत्त्वदर्शन विना, रत्न चिन्तामणि जन्म खोयो॥५॥

अर्थात् हे मन ! जबतक तुम आत्मतत्त्वको पूर्णरूपसे नहीं जान लेते तबतक सभी साधन झूठे हैं; तुम्हारा मनुष्य-तन भी शरद् ऋतुकी वर्षाके समान व्यर्थ ही चला गया।

स्नान, सेवा-पूजा, दान करने तथा भस्म लगाकर नेत्रोंको रक्तवर्ण बनानेसे क्या लाभ ? और तप, तीर्थसेवन, जप, तिलक-माला धारण करने एवं गङ्गाजल पान करनेसे ही क्या हुआ ? वेद, व्याकरण और वाणी बोलने, राजा और रंकको पहचानने, देवदर्शन और पूजा करने तथा वर्ण-भेद समझनेसे क्या हुआ ?

ये सब केवल पेट भरनेके प्रपञ्च है। इन साधनोंके द्वारा परब्रह्मस्वरूप आत्माका चिन्तन नहीं हो सकता। इसलिये नरसिंह कहता है कि आत्मदर्शन किये बिना तुमने इस चिन्तामणिके समान मनुष्यतनको भी व्यर्थ ही गँवा दिया।

अतः भाई ! इस व्यर्थके झमेलेमें कौन पड़े ? शास्त्रार्थ उन्हीं लोगोंको मुबारक हो जिन्हें अपने पेटकी पड़ी है। मुझे तो रोटीका टुकड़ा मिल गया तो भी ठीक और न मिला तो भी ठीक।' इस प्रकार भक्तराजने पण्डित-अपण्डितका विवेचन किया और आत्म-चिन्तनका महत्त्व बतलाया।

भक्तराजके इस निर्भीक विवेचनको सुनकर उपस्थित सब लोग अवाक् हो गये। राजाने विचार किया कि पूर्णरूपसे परीक्षा किये विना भक्तराजको दोषी या निर्दोष कुछ भी कहना न्याय-

विरुद्ध है। तब ऐसा कोई उपाय करना चाहिये जिसमें निरपराधी मनुष्यको दण्ड भी न मिले और अन्य पक्षको भी पूर्ण सन्तोष हो जाय। इस प्रकार विचार करते-करते सहसा उन्हें एक मार्ग सूझ पड़ा। उन्होंने एक फूलोंका हार मँगाया और उसे हाथमें लेकर कहा—'भक्तराज! यद्यपि आपका कथन एकदम सत्य है, फिर भी आपके विरुद्ध इन लोगोकी गवाहियाँ होनेके कारण सत्य-असत्यका निर्णय करना कठिन हो गया है। अतः मैंने एक उपाय सोचा है जिसमें न्याय भी ठीक-ठीक हो जाय और दोनों पक्षमेंसे किसी-को कोई शिकायत करनेका भी मौका न मिले। आप यह पुष्पहार अपने हाथमें लीजिये और राजमन्दिरमें चलकर भगवान् राधादामोदरके कण्ठमें समर्पित कर दीजिये। मैं स्वयं मन्दिरका ताला बंद करके चाभी अपने पास रक्खूँगा, यदि कल प्रातःकाल होनेके पहले स्वयं भगवान् प्रकट होकर यही हार आपके गलेमें डाल देंगे तो आपकी निर्दोषता सिद्ध हो जायगी और यदि ऐसा न होगा तो फिर आपको उचित दण्ड दिया जायगा।'

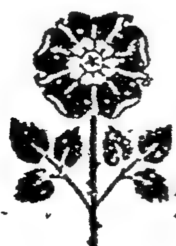
राजाका यह अन्तिम निर्णय सुनकर भक्तराजने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'न्यायप्रिय नीतिज्ञ राजन्! भगवान् भक्तवत्सल हैं। यदि मेरी सच्ची निष्काम भक्ति उनमें होगी तो वह अवश्य अपने कण्ठका हार मुझे दे देंगे। और यदि ऐसा न भी हुआ तो भी क्या? मेरे लिये राजमहल और कारागृह समान है। मुझे तो भगवत्कीर्तन करनेके लिये कोई भी एक स्थान मिलना चाहिये, इतना ही मेरे लिये बस है।'

भक्तराजने राजाके हाथसे पुष्पहार ले लिया। उन्होंने राजमहलके मन्दिरमें जाकर भगवान् राधादामोदरके कण्ठमें हार डाल दिया और भक्तिपूर्वक प्रणाम करके बाहर निकल आये। राजाने मन्दिरके तालेको बड़ी सावधानीसे बंद करके चाभी अपने पास रख ली।

सारंगधरने अपना अधिकार प्रदर्शित करते हुए कहा—'नरसिंहराम! यदि इस न्यायमें तू असफल रहा तो राजाजीकी तलवारसे तेरा सिर धड़से अलग कर दिया जायगा।'

'भाई! राजाके हाथसे, भगवान्‌के मन्दिरमें और मेरे नाथके सामने यदि मेरी मृत्यु हो जाय तो इससे बढ़कर और क्या सौभाग्यकी बात होगी? फिर मेरे आत्माको तो स्वयं यमराज भी नष्ट नहीं कर सकते और इस नाशवान् देहके नष्ट होनेका मुझे किसी प्रकारका दुःख नहीं है, क्योंकि सत्यके लिये किया गया देहत्याग मुझे अमर बना देगा।' भक्तराजने दृढ़ताके साथ कहा।

इतना कहकर भक्तराज मन्दिरके चौकमें बैठ गये और भजन करने लगे। अन्य पक्षवालोंके साथ स्वयं राजा भी वहाँ भक्तराजका न्याय करनेके लिये बैठ गये।



हार-प्रदान

किसी मनुष्यका जमा किया हुआ द्रव्य समय पाकर नष्ट हो जाता है; विद्या, यौवन और जीवन भी चञ्चल होनेके कारण काल-कर्मके अधीन होकर नष्ट हो जाते हैं। परन्तु भगवान्‌का भजन कालान्तरमें भी नष्ट नहीं होता। उसका फल यदि इस जन्ममें न भी मिले तो जन्मान्तरमें चक्रवृद्धि व्याजके साथ मिलता है; परन्तु मिलता जरूर है, वेकार नहीं जाता। भक्तराज इसी विश्वासको हृदयमें रखकर भगवान्‌का भजन कर रहे थे। परन्तु यह वात रह-रहकर उनके हृदयमें खटक रही थी कि मेरा प्रिय राग केदार तो साठ रुपयोंमें वन्धक पड़ा हुआ है। उसके विना भगवान्‌का आवाहन कैसे करूँगा? उन्होंने भगवान्‌का ध्यान

करनेकी बहुत चेष्टा की, परन्तु इस बातके लिये उनका चित्त विह्वल हो उठता था।

*　*　*　*

दिव्य वैकुण्ठधाममें भगवान् श्रीकृष्ण सो रहे थे और जगन्माता श्रीलक्ष्मीजी पादसेवन कर रही थीं। आधी रातके समय भगवान् एकाएक जाग उठे और मानो कहीं जानेकी तैयारी करने लगे। इस प्रकार सहसा उन्हें तैयार होते देख श्रीलक्ष्मीजीसहित समस्त पार्षदोंको बड़ा आश्चर्य हुआ।

श्रीलक्ष्मीजीने हँसते हुए प्रश्न किया—'प्राणेश! आज अचानक आपकी निद्रा कैसे भंग हो गयी? क्या किसी दुर्धर्ष दैत्यका वध करनेके लिये आप इस समय उद्यत हो रहे हैं? अथवा किसी पशु भक्त गजेन्द्रका उद्धार करना है?'

'प्रिये! तुमलोग इस रहस्यको क्या समझोगी? मेरी शरणमें आये हुए समस्त जीव मुझे एक समान प्रिय हैं, चाहे वे पशुयोनिमें हों या देवयोनिमें। परन्तु आज तो मैं एक अपने परमप्रिय भक्तको सहायता देनेके लिये जा रहा हूँ; उस निरपराधी भक्तराजको.......।' इतना कहते-कहते बात अधूरी ही छोड़कर भगवान् अत्यन्त शीघ्रतासे चल पड़े। भक्तवत्सल भगवान्‌ने आज साथमें गरुड़ या किसी पार्षदको भी लेनेकी आवश्यकता नहीं समझी। भक्तराजके दुखी हृदयकी पुकार सुनकर उनके हृदयमें भी व्यथा हो रही थी। उन्होंने तुरंत जूनागढ़ आकर भक्तराजका-सा

स्वरूप धारण किया और धरणीधर मेहताके घरपर पहुँचकर उसका दरवाजा खटखटाना आरम्भ किया ।

'कौन है ?' सोये-सोये धरणीधरने प्रश्न किया ।

'द्वार खोलिये । मैं नरसिंहराम हूँ । ऋणमुक्त होनेके लिये आया हूँ ।' भक्तराजरूप भगवान्‌ने कहा ।

भक्तराजकी आवाज सुनकर धरणीधरकी स्त्रीने द्वार खोल दिये । भक्तराजस्वरूप भगवान्‌के सामने आनेपर धरणीधरने नमस्कार किया और कहा—'भक्तराज ! इतनी कौन-सी जल्दी थी कि आपने इस समय कष्ट किया ? अगर कुछ दिन रुपया रह भी जाता तो कोई हर्ज नहीं था ।'

'भाई ! यह तो ठीक ही है । परन्तु जब एक उदार गृहस्थसे रुपये मिल गये तब उन्हें घरपर रखनेसे लाभ ही क्या ? फिर इसी समय मुझे केदारराग गानेकी भी बड़ी देर हो रही है; इसीसे विचार किया कि अभी चलकर रुपये दे दूँ और रागको छुड़ा लाऊँ ।' नरसिंहरामस्वरूप भगवान्‌ने उत्तर दिया ।

भगवान्‌ने इतना कहकर धरणीधरके सामने साठ रुपये रख दिये । धरणीधरने रुपये गिनकर रख लिये और नरसिंहरामके प्रतिज्ञापत्रपर भरपाई लिखकर उसे भगवान्‌को दे दिया । प्रतिज्ञापत्र लेकर भगवान् राजमहलके मन्दिरमें आये जहाँ व्यथितहृदय भक्त-राज एकाग्र चित्तसे भगवद्भजन और ध्यान कर रहे थे । भगवान्‌ने अन्तरिक्षसे उस पत्रको भक्तराजके सामने गिरा दिया । परन्तु इस

बातको भक्तराजके अतिरिक्त और किसीने नहीं देखा। भक्तराजने पत्र सामने गिरते देख कौतूहलवश उसे उठा लिया। उन्होंने जब यह देखा कि यह तो मेरा ही प्रतिज्ञापत्र है तब तो उन्हें बड़ा विस्मय हुआ; फिर उन्होंने उसपरके नवीन अक्षरोंको पढ़ा। उसमे लिखा था—'आज आधीरातको जगाकर नरसिंहरामजीने मेरे पूरे साठ रुपये चुका दिये। अतएव मैंने भरपाई लिख दी; अब वह केदारराग प्रेमसे गा सकते है।—धरणीधर राय।'

पत्र पढ़ते-पढ़ते भक्तराजके नेत्रोंमे प्रेमाश्रु छलक पड़े, कण्ठ भर आया, शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने सोचा, यह कार्य भी भगवान्‌का ही किया हुआ है। वह प्रेममें उन्मत्त होकर नाचने लगे। उनकी इस स्थितिको देखकर वहाँपर उपस्थित लोग नाना प्रकारकी कल्पनाएँ अपने मनमें करने लगे। अनन्तरायने कहा—'देखो, अब पोल खुल जानेके भयसे यह पागल बननेका दम्भ कर रहा है।' सारंगधरने कहा—'प्रातःकाल होते ही राजाकी तलवार-से अपने-आप इसका पागलपन दूर हो जायगा।'

परन्तु भक्तराजको इन सब बातोंसे क्या प्रयोजन था? उनके दिलमें तो अनायास प्रतिज्ञापत्र प्राप्त हो जानेसे भगवान्‌के प्रति अनन्य प्रेम उमड़ पड़ा था। 'भगवान्‌के हृदयमें मेरे-जैसे क्षुद्र जीव-के लिये भी स्थान है' इस विचारने उन्हें पागल बना रक्खा था और वह बेसुध होकर प्रेमावेशमें नृत्य कर रहे थे। उन्हें यह भी स्मरण नहीं था कि अब प्रातःकाल होनेमें कुछ क्षण ही शेष रह गये हैं।

'भक्तराज ! पागलपन दिखाते-दिखाते तो सवेरा हो आया। अब इस अन्तिम मुहूर्त्तमें यदि आपके कण्ठमें हार नहीं पड़ा तो यह नृत्य आपकी रक्षा नहीं कर सकता। इन फालतू बातोंमें क्या रक्खा है, शीघ्र शर्त पूरी कीजिये।' राजा माण्डलीकने भक्तराजको सचेत करते हुए कहा।

राजाकी सत्तासूचक आवाज सुनकर भक्तराज प्रेमसमाधिसे जाग उठे। उस समय पूर्व दिशामें अरुणोदय होने ही जा रहा था। पक्षिगण जाग्रत् होकर अपने कलरवसे सूर्यभगवान्‌का आवाहन कर रहे थे। भक्तोंके हृदयस्थित नटखट नटवरकी मनोरम मूर्त्ति मन्द-मन्द हँस रही थी।

भक्तराजने मनमें विचार किया कि राजाका कथन ठीक ही है। मैं तो भगवान्‌के विश्वासपर बैठा हुआ हूँ, परन्तु न मालूम वह क्या विचार कर रहे हैं। क्या इस समयतक वे निद्रामें ही मग्न पड़े होंगे? या इस प्रेमयज्ञमें वह मेरा बलिदान लेना चाहते हैं? इस प्रकार विचार करते-करते उनके नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह चलने लगा। उन्होंने अपनी करताल सँभाली और केदाररागमें प्रेमपूर्ण भजन गाना शुरू कर दिया। उस भजनका भाव इस प्रकार था—

'दयालु देव ! क्या आपकी प्रीतिका यही फल मिलेगा? परन्तु मेरा तो निश्चय है कि मेरी गर्दनकी अपेक्षा आपकी लाजका मूल्य कहीं अधिक है। भगवन् ! शास्त्र-पुराणोंमें आपकी महान् उदारता दिखाते हुए कहा गया है कि आपने एक मुट्ठी तन्दुलके बदले

भक्त और भगवान्

भक्तके सामने भगवान्के प्रकट होनेपर भक्तकी क्या दशा होती है, इसका वर्णन कौन कर सकता है ? भक्तराज अपने नेत्रों-से उन साँवरे सलोनेके दिव्य रूपरसका पान करने लगे । जब उससे भी तृप्ति न हुई तो भगवान्के चरणकमलोंमें लिपट गये ।

भगवान्ने हँसते हुए प्रेमभरे स्वरमें कहा—'नरसिंहराम ! आज मैंने विनोदवश तुमको बहुत अधिक दुःख दे दिया ।'

'क्षमा कीजिये कृपानिधान ! आपकी मायाके वशीभूत होकर अब अधिक मैं इस असार संसारमें नहीं रहना चाहता । प्रभो ! इस संसारमें तो दगाबाज, कुटिल, अन्यायी और नास्तिक लोगोंको ही स्थान देना उचित है । जिस प्रकार शकटके नीचे चलनेवाला कुत्ता शकटका सारा भार अपने ही ऊपर समझकर उसके नीचे-

नीचे चलता रहता है, उसी प्रकार यहाँ समस्त प्राणी अपने अभिमानके वश संसारका सारा बोझ अपने ऊपर समझकर नाना प्रकारके दु:ख भोगा करते हैं। मै तो इस झूठे संसारसे ऊब गया हूँ। मुझे इस अयोग्य संसारसे कोई प्रयोजन नहीं। मैं तो आपके चरणोंके अतिरिक्त ब्रह्मपदको भी नहीं चाहता।' गद्गद होकर भक्तराजने प्रार्थना की।

'भक्तराज! प्रेममग्न होकर इस सरस संसारको दोष देना उचित नहीं। पूर्वकालमें भक्त बालक प्रह्लाद, तपस्वी बालक ध्रुव, राजा अम्बरीष, महात्मा विदुर, भक्तिमती गोपाङ्गनाएँ आदि सभी भक्तोंने इसी संसारमें रहकर मुझे प्राप्त किया था। वत्स! मुझको प्राप्त करनेके लिये अरण्यनिवास, तीव्र तपश्चर्या आदिकी कोई खास आवश्यकता नहीं है। महाभारतमें कहा गया है—

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्॥

इससे यह सिद्ध होता है कि वनमें निवास करनेवाले, काम-क्रोधादि षट् विकारोंमें फँसे हुए वैरागियोंसे संसारमें रहकर गृहस्थ-धर्मानुसार जीवन बितानेवाला रागी कहीं अधिक उत्तम है। फिर संसारको त्यागकर जो भक्त मुझे प्रसन्न करता है, उसकी अपेक्षा संसारमें रहकर मुझसे प्रेम करनेवाला भक्त मुझे अधिक प्रिय है। अतएव इससे भागनेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये।' भगवान्‌ने संसारकी महत्ता बतलाते हुए कहा।

'परन्तु भगवन् ! मैं तो संसारमें रहकर भक्ति करनेपर भी आपको सदा ही अपने सांसारिक कार्योंके लिये कष्ट देता रहा और इस तरह दोषभागी बनता रहा । इस बातका मुझे बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है ।' भक्तराजने निवेदन किया ।

'परन्तु वत्स ! मैंने तुम्हारा कौन-सा दुष्कर कार्य कर दिया है ? इन छोटे-मोटे कार्योंको करके भला तुम्हारी भक्तिका वदला दिया जा सकता है ? तुमने तो अपना तन, मन, धन—प्रत्युत अपना सर्वस्व मेरे लिये न्योछावर करके मेरा भजन किया है । प्राण जानेका मौका आ जानेपर भी तुमने मेरे भजनसे विचलित होना पसंद नहीं किया । इसके वदले मैंने किया ही क्या है ? अपने पुत्रका विवाह, पिताका श्राद्ध, पुत्रीका दहेज और एक पैसेकी तुच्छ माला— क्या इसीके लिये तुम ऐसा कह रहे हो ? ये कार्य तो एक साधारण-सा धनिक भी कर सकता था । भक्तराज ! इन तुच्छ कार्योंको सम्पन्न करके मै तुम्हारी वहुमूल्य भक्तिके एक शतांशका भी बदला नहीं चुका सकता । क्या करूँ, मुझे अपने भक्तोंका कर्जदार बने रहनेमें ही सन्तोष मिलता है । भक्तिका वदला चुकाकर मै उसका महत्त्व नहीं घटाना चाहता ।' भगवान्ने उदारतापूर्वक कहा ।

'परन्तु महाराज ! ऐसा समय कब आवेगा जब कि मैं आपके चरणोंकी रज नित्य धारण किया करूँगा ।' भक्तराजने अधीर होकर पूछा ।

'वत्स ! मैंने तुम्हें यह मनुष्यदेह भी तुम्हारी इच्छाके अनुसार ही दी है । शायद मेरी मायाका आवरण पड़ जानेसे तुम वह बात भूल गये हो । मै तुम्हें स्मरण करा रहा हूँ । तुम पूर्वजन्ममें